आचार्यमानतुङ्गस्वामीविरचितभक्तामरस्तोत्रोपरि–

श्रमणाचार्यश्रीविभवसागरस्वामी प्रवचनकृतटीका–

भक्तामर शास्त्र

प्रवचनकार
सारस्वतकवि विद्या वाचस्पति
श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर मुनि

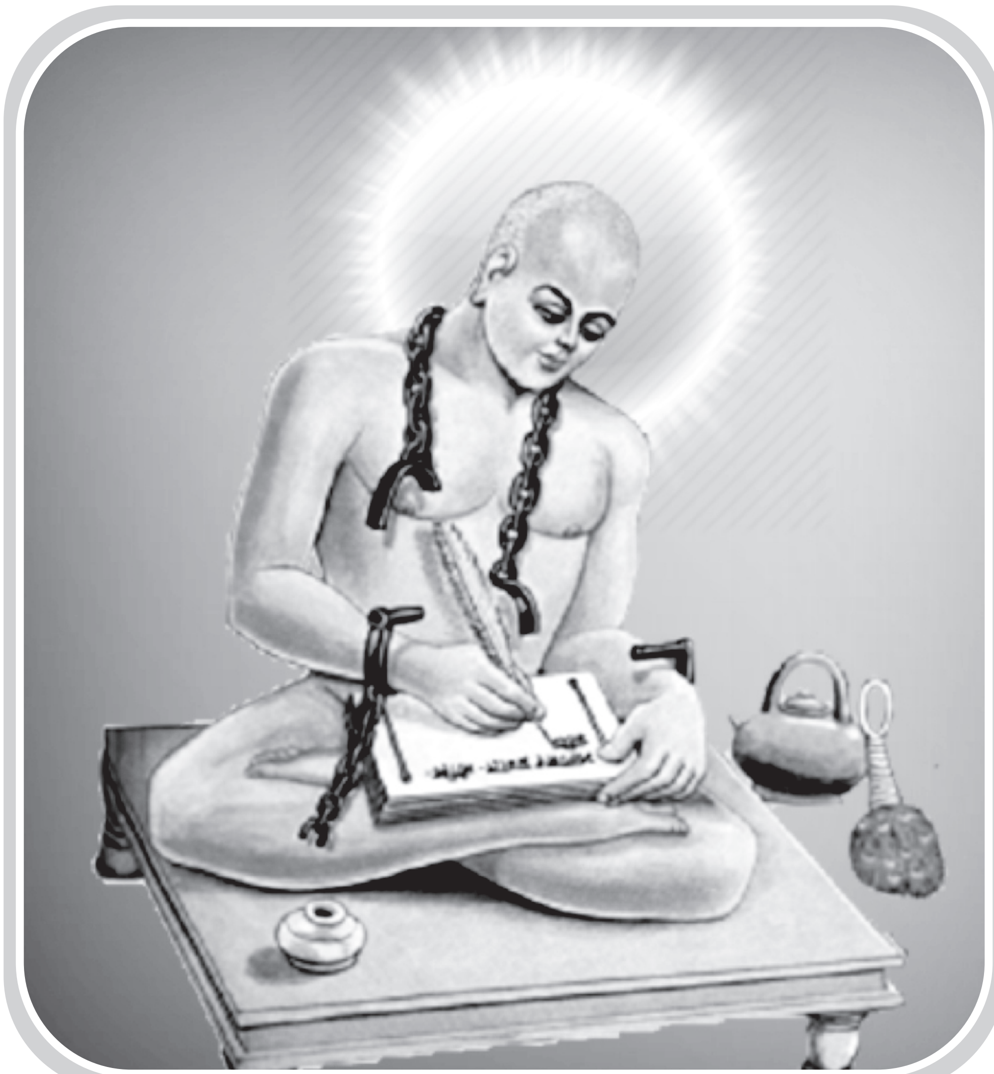

आचार्य मानतुंग स्वामी

आचार्यमानतुङ्गस्वामीविरचितभक्तामरस्तोत्रोपरि–

श्रमणाचार्यश्रीविभवसागरमुनिराज प्रवचनकृतटीका–

भक्तामर शास्त्र

प्रवचनकार

श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर मुनिराज

आलेखन

आर्यिका अर्हंश्री माताजी

संपादक

आशीष जैन आचार्य, जयपुर

प्रकाशक

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन

दहेरासर, गुलालबाड़ी, मुम्बई

मूल	–	**भक्तामर स्तोत्र**
लेखक	–	आचार्य मानतुंग स्वामी
टीका	–	भक्तामर शास्त्र
टीकाकार	–	श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर
सम्पादक	–	आशीष जैन आचार्य, जयपुर
आलेखन	–	बा.ब्र. रीना दीदी वर्तमान–आर्यिका रत्न अर्हंश्री माताजी
संशोधन	–	श्रमण शुद्धात्म सागर उमंग जैन, शिक्षिका, जयपुर
प्रवचन टीका	–	वर्षायोग 2012, शक्तिनगर, जयपुर
संस्करण	–	प्रथम 2012, द्वितीय, 2016 संशोधित : वर्ष 2019 प्रथम
भाव मूल्य	–	स्वाध्याय
प्रकाशक	–	श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन दहेरासर
प्राप्ति स्थल	–	1. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन 216, कीका स्ट्रील, दहेरासर, गुलालबाड़ी ट्रस्ट, मुम्बई 2. संघ 3. श्रमण श्रुत सेवा संस्थान (पं. क्र. COOP/2019 जयपुर/104083 प्रज्ञा इंस्टीट्यूट ऑफ पर्सनिलिटी डवलपमेन्ट, सिद्धान्त कॉम्पलेक्स, 141, FS-2, गली नं. 6 आदर्श बाजार, टोंक फाटक, बरकत नगर, जयपुर–302015 मो. 9829178749
मुद्रक	–	ज्योति ग्राफिक्स, जयपुर 8290526049, 8619727900

तीर्थंकर आदिनाथ

पूर्व के 11 वें भव में आप जय वर्मा थे 10 वें भव में राजा 'महाबल' हुए तब किसी मुनि ने बताया कि अगले दशवें भव में आप भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होंगे। पूर्व के नवे भव में ललितांग देव हुए, आठवें भव में वज्रजंघ, सातवें भव में भोगभूमिज आर्य, छठें भव में श्रीधर नाम देव, पांचवे भव में सुविधि, चौथे भव में अच्युतेन्द्र, तीसरे भव में वज्रनाभि और पूर्व के दूसरे अर्थात् तीर्थंकर से पूर्व वाले भव में 'सर्वार्थसिद्धि' में अहमिन्द्र हुए, वर्तमान भव में इस चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर हुए। आप अन्तिम कुलकर नाभिराय के पुत्र थे। आपकी नन्दा और सुनन्दा नाम की दो रानियाँ थी। आपके भरत और बाहुबली आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की दो पुत्रियाँ थी। उस समय आपने प्रजा को असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प यह छह कर्म सिखाये तथा क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र. इन वर्णों की स्थापना की। आषाढ़ कृ. 1 को कृतयुग का आरम्भ होने पर आप प्रजापति की उपाधि से विभूषित हुए। राज्य सभा में नृत्य करते–करते नीलांजना नाम की अप्सरा का मरण हो जाने पर आपको संसार से वैराग्य हो गया। आपने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली, 6 माह तक लगातार आप योग में रहे और फिर 7 माह 8 दिन तक आहार का लाभ नहीं हुआ। इस तरह 13 माह 8 दिन (चैत्र वदी नवमी से वैशाख सुदी दोज तक) आप निराहारी रहे। उसके पश्चात राजा श्रेयांस के यहाँ वैशाख शुक्ल तृतीया को प्रथम पारणा हुई। जिसके कारण यह तिथि अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इस प्रकार एक हजार वर्ष तक आप तप करते रहे, और केवलज्ञान प्राप्त कर समवशरण में भव्य जीवों को उपदेश देते हुए धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया तथा अन्त में अष्टापद कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

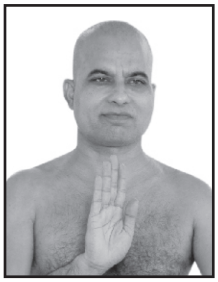

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज द्वारा प्रदत्त

आशीर्वाद

भक्तामर स्तोत्र परम पूज्य आचार्य श्री मानतुंग स्वामी की एक ऐसी अमरकृति है जो समग्र जैन समाज में बड़े आदर और सम्मान के साथ पढ़ी जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक पूजा-पाठ की पुस्तकों में, ऐसी एक भी पुस्तक न होगी कि जिसमें भक्तामर स्तोत्र न हो, ऐसा एक भी मन्दिर न होगा कि जिसमें भक्तामर स्तोत्र न हो तथा ऐसा एक भी जैनघर न होगा जिसमें भक्तामर स्तोत्र न हो। बुजुर्ग ऐसे भी लोग देखे गये हैं, जो भले भक्तामर स्तोत्र को पढ़ नहीं पाते हैं, पर बिना सुने भोजन भी नहीं करते हैं।

इसमें आदिनाथ भगवान की स्तुति की गई है। इसके मुख्य रूप से 48 काव्य मान्य हैं। श्वेताम्बर मत में 44 काव्य माने जाते हैं। जबकि उनके यहाँ भी अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन है फिर भी वे इसमें चार प्रातिहार्य ही मानते हैं। 48-4=44 रह जाते हैं। अन्य जगह 52 काव्य भी प्राप्त होते हैं। विभिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में शताधिक उसके अनुवाद प्राप्त होते हैं/

जैन स्तुति की महिमा जानने के लिये कवि कालिदास के कहने पर ही उज्जयिनी नगरी के धार ग्राम में महाराजा भोज ने मानतुंग को 48 द्वार वाले जेल में जंजीरों से बाँधकर परीक्षा ली थी- पर परम पूज्य आचार्य श्री मानतुंग की सम्यक् भक्ति के प्रभाव से सभी जंजीरें टूट गई थी और द्वार भी खुल गये थे। जैन स्तोत्र के इस चमत्कार ने सभी राजा प्रजा एवं कवि कालिदास को भी जैनदर्शन के प्रति श्रद्धाभिनत किया था।

आचार्य श्री विभवसागर जी ने उसके महत्त्व को सविस्तृत लिख कर ''भक्तामर शास्त्र'' के रूप में प्रस्तुति दी हैं, जो प्रशंसनीय है, मेरा उन्हें इसके लिये शुभाशीष-

।।ओं नमः।।

आचार्य विरागसागर
10/2/1/2539
भट्टारकजी की नसियां, जयपुर

प्रस्तावना

- श्रमणाचार्य विभव सागर

श्री दिगम्बराचार्य मानतुङ्ग स्वामी विरचित भक्तामर स्तोत्र जैन जगत में सुप्रसिद्द स्तोत्र है। इस स्तोत्र की महिमा प्रयोग करने के बाद ही स्वसंवेदन का विषय नहीं रह जाती प्रत्यक्ष में लाभ प्रदान करती हुई सिद्द होती है।

स्वर विज्ञान, व्यञ्जन विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान, मन्त्र विज्ञान, एवं स्वात्म विज्ञान से ओत-प्रोत भक्तराज मानतुङ्गाचार्य की आत्मीय, निष्काम जिन-भक्ति का सफल चामत्कारिक सुप्रयोग यह भक्तामर स्तोत्र है।

यह भक्तामर स्तोत्र भारतवर्ष के प्रायः समग्र जिनालयों, समस्त चतुर्विध संघों एवं समस्त जैन परिवारों में प्रतिदिन रुचि पूर्वक पढ़ा जाने वाला आगम-निष्ठ सर्वोत्तम, सरलतम, सर्वोपयोगी, आत्म-कल्याण कारी, अतिशय वर्द्धक, विशुद्दि कारक, ऋद्दि-सिद्दि, सुख सम्पादक, आरोग्य प्रदायक, विघ्न विनाशी, पाप प्रणाशक, पुण्य प्रकाशक, संवर-निर्जरा कारक महानतम महत्व पूर्ण आवश्यक स्तोत्र है।

भक्तामर स्तोत्र भक्ति भाव प्रधान अध्यात्म समन्वित महान स्तोत्र है। इसमें पर्यावरण को पवित्र बनाने वाले ध्वनि घटक समाहित है। स्तोत्र के पठन-पाठन करने से मानसिक, वाचिक, कायिक आत्मशान्ति प्रकट होती है। तथा दैहिक-दैविक विपदाए पलायमान हो जाती हैं। एवं प्राकृतिक प्रकोपों से भी रक्षा होती है। यथार्थ में यह मंत्र स्तोत्र है। इसके ऋद्दि मंत्र, जाप्य मन्त्र, आराधना मंत्र, दीप मंत्र सभी अचिन्त्य प्रभाव शाली हैं।

भक्तामर के यन्त्र तो दर्शन मात्र से प्रभाव दर्शाने लगते हैं। यह समग्र अनुष्ठान श्रद्दा, भक्ति, के साथ विनय एवं विवेक सापेक्ष है।

आचार्य मानतुङ्ग के भक्ति स्वरों में
वीतराग ईश्वर! प्रथम परमेश्वर! तीर्थंकर वृषभेश्वर
समाहित थे।

आचार्य भगवन्! महामुनिराज
को जब जेल ले जाया जा रहा था; उस समय
भक्तगण एवं प्रजाजन आकुल भाव पीछे-पीछे
आ रहे थे; सबके मन शंकित थे हमारे मुनिवर
का क्या होगा?

आचार्य मानतुंग तो निःशंक,
निर्भय सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा विरक्त पुरुष थे।
पर, जनता के भावप्रश्न का समाधान करने में
आशीर्वाद स्वरूप दो हाथ ऊपर उठाये।

दाये हाथ में "भक्त" बाये में "अमर"
शब्द लिखा हुआ देखा।

भक्त गण समझ गये भक्त अमर
होता है। निःसंदेह रात में चमत्कार हुआ।

श्री भक्तामर स्तोत्र रचना प्रभाव से
अड़तालीस ताले टूट गये। मुनिवर प्रातः बाहर
विराजमान हो भक्तामर का पाठ कर रहे।
श्रावक समूह ने मानतुंग मुनिवर के श्री मुख से
भक्तामर स्तोत्र श्रवण किया तबसे जगत में
भक्तामर स्तोत्र पाठ प्रारंभ हो
अपने सफल प्रयोगों के कारण
अब तक निर्बाध रूप से
जयवंत हैं; आगे जयवंत रहे
इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में
अक्षर भाव समर्पण

□

शास्त्र कवि
श्रमणाचार्य विभवसागर

श्रुतपंचमी पर्व, 2017
विदिशा (म.प्र.)

भक्तामर स्तोत्र
अनुभूत चमत्कार

श्रमणाचार्य विभवसागर

मैं दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा पर था। हमारा ससंघ रात्रि विश्राम पंचायत भवनमेंहुआ। रात्रिक शयनकाल में मुझे चितायें जलती दिखरहीथी, अन्य साधुओं की चटाई अदृश्य शक्ति खींचकर फेंक रही, इस तरह संघ पर उपसर्ग हो रहा था।

भैयाजी! ने मुझसे निवेदन किया- मैं उठकर बैठा- मैंने श्री भक्तामर स्तोत्र का भक्ति पाठ आरम्भ किया भक्तामर स्तोत्र का मात्र एक बार ही पाठ हुआ कि विघ्न बाधा दूर होगयी। सभी संघ शांति से शयन एवं धर्मध्यान कर प्रातः मुझसे पूछने लगा- हे भगवन्! आपने ऐसा क्या किया था जिसके प्रभाव से दैविक उपसर्ग दूर हो गया? मैंने कहा- यह तो श्री भक्तामर स्तोत्र का चमत्कार है।
यह सुनकर श्रद्धा बलवती हुई।

मेरा आप सभी श्रद्धालुओं से यही निवेदन आप दैनिक जीवन में नित्य-प्रति इस महान स्तोत्र का भक्ति भाव सहित शुद्धि- और विशुद्धि पूर्वक पाठ एवं ऋद्धि मंत्र का जाप्य प्रारम्भ करें! अभूतपूर्व परिवर्तन हो सकता है।

भाव परिवर्तन होने पर
चमत्कार होता है।
भक्तामर स्तोत्र
अचिन्त्य फल प्रदायी है।

प्रवचनीय

श्री दिगम्बराचार्य मानतुङ्ग स्वामी विरचित भक्तामर स्तोत्र जैन जगत में सुप्रसिद्ध है। इस स्तोत्र की महिमा, अनुभूत करने के बाद ही कथन का विषय नहीं रह जाती प्रत्यक्ष में लाभ प्रदान करती हुई सिद्ध होती है।

स्वरविज्ञान, व्यंजन विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, मंत्र विज्ञान एवं स्वात्म विज्ञान से ओत-प्रोत भक्तराज मानतुङ्गाचार्य की आत्मीय, निष्काम जिनभक्ति का सफल चमत्कारिक सुप्रयोग यह भक्तामर स्तोत्र है, जो वर्तमान में भारतवर्ष के प्राय: सम्पूर्ण जिनालयों, समस्त चतुर्विध संघों एवं समग्र जैन परिवारों में प्रतिदिन रुचि पूर्वक पढ़ा जाने वाला आगम निष्ठ सर्वोत्तम, सरलतम, सर्वोपयोगी, आत्मकल्याणकारी, अतिशयवर्द्धक, ऋद्धि-सिद्धि, सुख सम्पादक, आरोग्य प्रदायक, विघ्नविनाशक, पाप प्रणाशक, पुण्य प्रकाशक, संवर-निर्जरा कारक महानतम महत्त्वपूर्ण आवश्यक स्तोत्र है।

शक्तिनगर जयपुर वर्षायोग में इस स्तोत्र पर स्वात्म संवेदनीय महत्त्वपूर्ण अभूतपूर्व प्रवचन हुये। जिन दुर्लभतम प्रवचनों का आलेखन संघस्थ ब्रह्मचारिणी दीदी रीना बहिन वर्तमान में आर्यिका अर्हंश्री माताजी ने गुरुभक्ति एवं श्रुताराधना में समर्पित अन्तर्मन से पूर्ण तत्परता के साथ कर प्रशंसनीय कार्य किया। मैं उन्हें तथा उनके इस अप्रतिम पुनीत कार्य को साधुवाद देता हूँ। आपके द्वारा भविष्य में जिन शासन की प्रभावना कारक ऐसे महानतम अनेक अनुष्ठान हों।

अभिनव विद्वत रत्न संस्कृत, प्राकृत भाषा के आगमनिष्ठ, विनम्र आराधक, साधुभक्ति पराध, श्रुतसेवी श्री पं. आशीष जैन प्राकृताचार्य जी ने इस ग्रन्थ के कुशल सम्पादन का कार्य किया, एतदर्थ आशीष...। शिक्षिका श्रीमती उमंग जैन, शिक्षिका सुनीता जैन ने प्रूफ संशोधन कार्य किया। अध्यक्ष श्री राजेन्द्र जैन, सह मंत्री श्री आलोक अजमेरा एवं मंत्री श्री सौरभ जैन के नेतृत्व में श्री दिगम्बर जैन मुनि सेवा संघ, शक्तिनगर, जयपुर वर्षायोग समिति ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में द्रव्य व्यवस्था का सौभाग्य अर्जन करने हेतु श्रीफल अर्पण किया। भावनानुरूप यथेष्ट कार्य किया फलस्वरूप ग्रन्थ आपके कर कमलों में हैं। इस पुनीत कार्य के लिये श्री दिगम्बर जैन मुनि सेवा संघ को मंगल आशीष...।

अंततोगत्वा मैं परम पूज्य गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज गुरुदेव को पुन: पुन: नमोऽस्तु निवेदित करता हूँ जिनके आशीर्वाद से महान प्रवचन हुये, तथा जिनने अपना स्वहस्तलिखित मंगल आशीर्वाद लिखकर प्रदान किया।

ग्रन्थ में क्या है? ग्रन्थ में प्रवचन कैसे है? यह निर्णय मैं पाठकों को सौंपता हुआ, प्रत्यक्ष-परोक्ष समस्त सहयोगितयों के लिये पुनश्च आशीष...।

पुन: श्रमण शुद्धात्मसागर द्वारा संशोधित एवं आर्यिका अर्हंश्री माताजी द्वारा सम्पादित यह नवीन संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

श्रुताराधक-

श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर

शक्तिनगर, जयपुर वी.नि.सं. 2539, दीपावली

भक्तामर शुद्ध पढ़ने के लिए आवश्यक जानकारी

1. भक्तामर स्तोत्र संस्कृत के वसंततिलका छंद में लिखा गया है इसका लक्षण ''तभजा जगौग:'' है। इस छंद के मधु माधवी, सिंहोन्मत्ता व उद्धर्षिणी नाम भी हैं। इस छंद में 4 पंक्ति होती हैं एक पंक्ति में 14 अक्षर व 21 मात्रायें होती हैं प्रत्येक पंक्ति के 14 अक्षरों से 7 ह्रस्व और 7 दीर्घ होते हैं। एक काव्य में 56 अक्षर और 84 मात्रायें होती हैं 48 काव्यों में 2688 अक्षर और 4032 मात्रायें होती हैं। इसकी रचना लगभग सातवीं शताब्दी में हुई।

छंद में मात्राओं की रचना – (ह्रस्व = | , दीर्घ = S)

मात्राएँ	S	S	|	S	|	|	|	S	|	|	S	|	S	S	= 21
14 अक्षर–	भक	ता	म	र	प्र	ण	त	मौ	लि	म	णि	प्र	भा	णा	
	S	S	|	S	|	|	|	S	|	|	S	|	S	S	= 21
14 अक्षर–	मुद्	यो	त	कं	द	लि	त	पा	प	त	मो	वि	ता	नम्	
	S	S	|	S	|	|	|	S	|	|	S	|	S	S	= 21
14 अक्षर–	सम्	यक्	प्र	णम्	य	जि	न	पा	द	यु	गं	यु	गा	दा	
	S	S	|	S	|	|	|	S	|	|	S	|	S	S	= 21
14 अक्षर–	बा	लम्	ब	नं	भ	व	ज	ले	प	त	तां	ज	ना	नाम् ।।	

- ✻ जो अक्षर वर्णमाला में नहीं है और दो व्यंजन और एक स्वर से मिलकर बनते हैं वे संयुक्त अक्षर कहलाते हैं जैसे क्ष, त्र, ज्ञ, क्र, प्र, म्र, भ्र, म्य, क्य आदि।
- ✻ स्वराघात विधि–संयुक्त अक्षर के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) आ जावे तो संयुक्त अक्षर के पूर्व स्वर पर जोरे दते हुए संयुक्त अक्षर को दो बार उच्चारण जैसा बोलते हैं यही स्वराघात है। दीर्घ स्वर, अनुस्वार व विसर्ग आने पर स्वराघात नहीं होता है।
- ✻ ए ऐ ओ औ, ये दीर्घ हैं लेकिन संध्यक्षर हैं। ये दो स्वरों से मिलकर बने हैं अ+इ=ए, अ+ए=ऐ, अ+उ=ओ, अ+ओ=औ। इन सभी में दो स्वर हैं इसलिए ये हमेशा दीर्घ होते हैं।
- ✻ वर्णमाला में 14 स्वर और 33 व्यंजन होते हैं। 14 स्वर में 5 ह्रस्व और 9 दीर्घ होते हैं 33 व्यंजन में 20 घोष होते हैं और (कख, चछ, तथ, टठ, पफ, श, ष, स) ये तेरह अघोष होते हैं जो अक्षर मुँह से बाहर आते हैं वे स्वर सहित व जो मुँह के अन्दर ध्वनित होते हैं उन्हें हलन्त अक्षर कहते हैं।

* ए और ओ के बाद कहीं–कहीं (S) चिह्न लगा होता है इसका मतलब 'अ' है किसी भी अक्षर के ऊपर अनुस्वार लगा हो तो उसे ङ् ञ् ण् न् म् इनमें से कोई एक अक्षर में उच्चारित करते हैं।

  पाँच वर्ग होते हैं – कण्ठोच्चारित – क वर्ग – क ख ग घ ङ

  मूर्धोच्चारित – ट वर्ग – ट ठ ड ढ ण

  ओष्ठोच्चारित – प वर्ग – प फ ब भ म

  ताल्वोच्चारित – च वर्ग – च छ ज झ ञ

  दन्त्युच्चारित – त वर्ग – त थ द ध न

  अन्योच्चारित – य र ल व श ष ह संयुक्त अक्षर क्ष त्र ज्ञ

* किसी भी शब्द में अनुस्वार के बाद जिस वर्ग का अक्षर आता है तो अनुस्वार, उसी वर्ग का अंतिम अक्षर हो जाता है। जैसे – गंगा, इसमें अनुस्वार को ङ् बोलेंगे यदि झंडा हो तो झण्डा, पंथ–पन्थ, पंप–पम्प, गंजा–गञ्जा आदि।

* गंगा में अनुस्वार के बाद गा है और गा क वर्ग का है इसलिये अनुस्वार ङ् होगा, झंडा में डा है ड ट वर्ग का है ट वर्ग का अन्तिम अक्षर ण है अतः ण् होगा आदि।

* शब्द के अन्तिम अक्षर पर अनुस्वर हो तो म् पढ़ा जाता है जैसे ज्ञानं, ध्यानं, मानं।

* स से पूर्व अनुस्वार को न्, श, य के पूर्व ञ्, ह के पूर्व ङ् और ष के पूर्व ण् पढ़ते हैं।

* श ष स तीनों का उच्चारण अलग–अलग है जब जीभ मूर्धा से घिसटते हुए ड की तरह आती है तब ष होता है, जब जीभ की नोंक ऊपर दाँत की जड़ के ऊपर लगती है तब श होता है और जब जीभ के ऊपर के दाँत के पिछले हिस्से से लगाकर बोला जाये तो स होता है। विसर्ग का उच्चारण हलन्त ह् की तरह होता है।

साभार :

उच्चारणाचार्य विनम्रसागर मुनि

***

संवेदना

– श्रमण आचारणसागर मुनि

भक्तामर स्तोत्र एक अनुपम, कर्णप्रिय, आध्यात्मिक भावनाओं से समन्वित महान स्तोत्र है। इसमें पर्यावरण को पवित्र बनाने वाले घटक हैं। भक्तामर स्तोत्र का पठन-पाठन करने से जीवों को मानसिक, वाचनिक, कायिक व आत्मिक शांति प्राप्त होती है। भव्य जीव भक्तामर स्तोत्र का एवं इस स्तोत्र के पद्यानुवादों का एवं इस भक्तामर स्तोत्र का विधान भक्ति-भाव से करते हैं। भक्तामर स्तोत्र का पाठ करने से कई असाध्य व्याधियाँ, देवकृत उपसर्गों से तथा क्रूर तिर्यंचों से एवं प्रकृति के प्रकोपों से जीवों की रक्षा हो जाती है।

भक्तामर स्तोत्र की महिमा का तो बखान करने में वर्तमान के आचार्य, उपाध्याय, साधु भी असमर्थ है। इस श्रेष्ठ स्तोत्र की महिमा तो अगम्य, अद्‌भुत एवं अलौकिक है। भक्तामर स्तोत्र पर मेरे गुरुवर सारस्वत कवि आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज ने 48 काव्यों पर 48 प्रवचन सहज, सरल, सुबोध, सुगम्य भाषा में देकर जीवों के आत्मोत्थान के मार्ग को प्रशस्त किया है। प्रत्येक काव्य के गूढ से गूढ रहस्यों का प्रकटीकरण कर उन्होंने श्रुत पिपासुओं के लिये अनमोल साहित्य प्रदान किया है। इस स्तोत्र का प्रत्येक शब्द मंत्रमय है।

श्री मानतुङ्गाचार्य की इस कृति ने उनकी भक्ति को सदा के लिये अमर बना दिया है। आचार्य श्री विभवसागर जी ने जो भक्तामर स्तोत्र से सारतत्त्व गहन चिंतन करके निकाला है वह पाठकों के लिये, साधकों के लिये आत्मकल्याण के लिये सदा प्रेरणादायक रहेगा। मिथ्यात्व सेवन करने वालों के लिये भी आचार्य महाराज ने अपने प्रवचनों के माध्यम से सम्यक्त्व को ग्रहण करने का सटीक उदाहरण देकर समुचित प्रेरणा दी है।

वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं सफल प्रयोग

आर्यिका अर्हं श्री माताजी

भक्तामर स्तोत्र पर हुए वैज्ञानिक अनुसंधान एवं श्रद्धालु साधकों द्वारा नित नूतन प्रयोगों के पश्चात् आश्चर्यजनक रहस्य (परिणाम) उजागर हुए जो हमारी श्रद्धा और भावना को बलवती बनाते हैं। तथा हमें अपनी अनमोल तात्त्विक विरासत के प्रति स्वाभिमान पैदा करते हैं। एवं स्तोत्र पठन–पाठन के प्रति अभिरुचि जागृत करते हैं ऐसे कुछ रहस्यों, तथ्यों, प्रयोगों से अवगत कराना नितांत आवश्यक समझकर प्रस्तुत करती हूँ।

1. इसमें प्रयुक्त स्वर, मात्रा, व्यंजन, विसर्ग एवं घोष, अघोष, तथा वर्ण ध्वनि एवं शब्दोच्चारण कर योग विज्ञान एवं प्राणायाम के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है, जैसे – छठवे काव्य में प्रयुक्त अल्पश्रुतं एवं श्रुतवताम् इन दो शब्दों में तं और ताम् का प्रयोग है, तं और ताम् के उच्चारण मात्र से मानव मस्तिष्क के दोनों भाग क्रियाशील हो जाते हैं जिनसे प्रज्ञा विकास एवं स्मृति विकास में कुछ ही दिनों में असाधारण परिवर्तन देखे जाते हैं अतः विद्या प्राप्ति के लिए छठवे काव्य की आराधना अनिवार्य रूप से करें। पैंतालीस वे काव्य का प्रयोग असाध्य रोगों के निवारणार्थ किया जा रहा –

इस काव्य में आगत वर्णों पर अनुसंधान होकर सिद्ध हो चुका कि – कैंसर और जलोदर जैसे रोग दूर किये जा सकते हैं– उदाहरण के लिए उद्भूत, भीषण, भार, भुग्नाः, भवन्ति इन पाँच शब्दों में 'भ' वर्ण का प्रयोग है। बारम्बार 'भ' के उच्चारण से वर्ण ध्वनि शक्तिशाली होकर प्रभावोत्पादक हो जाती है तथा कपालभाति भ्रामरी आदि योग, प्राणायाम होकर वर्ण मात्र के सही उच्चारण से अनेक रोगों का शमन करने में समर्थ सिद्ध होते हैं। तथा इसी काव्य में तीन बार विसर्ग का प्रयोग हुआ जो योग विज्ञान के आधार पर जल शोषक होने से जलोदर जैसी असाध्य बीमारी पर विजय पायी जा सकती है।

वर्तमान में डॉ. मंजू जैन, नागपुर ने इस काव्य पर शोध प्रबन्ध कर P.H.D. उपाधि प्राप्त की। तथा अनेक केन्सर ग्रस्त रोगियों को रोग मुक्त किया। आप निरन्तर देश–विदेश में भक्तामर के शिविर आयोजित कर रही हैं।

रोग कोई भी नैसर्गिक नहीं है, यह विकृति है। इसे प्रकृति मान लेना हमारी भूल है। विकृति को दूर किया जा सकता है, प्रकृति को नहीं। रोग का मुख्य कारण रक्तकणिकाओं में वायरस, विषाणुओं का प्रवेश हो जाना है। रक्त में प्रविष्ट ये वायरस, विषाणु, जीवाणु कौन है? जिन जीवों को हमने कष्ट पहुँचाया, पीड़ा पहुँचायी, प्राण घात किये उन जीवों से हम क्षमा भी न माँग पाये फलतः वे हमारे बैरी, विरोधी, शत्रु बनकर आज हमारे शरीर रूपी घर में प्रविष्ट हो हमको बाधा पहुँचा रहें।

डॉ. इन्जेक्शन एवं दवाओं के बल पर उन विषाणु, वायरस शत्रुओं का प्राणान्त कर देता है किन्तु शत्रुता का अन्त नहीं कर पाता फलतः वे शत्रु नूतन जन्म धारण कर पुनः नवीन रोग उत्पन्न करने में सक्षम हो जाते हैं और हम बीमार के बीमार रह जाते हैं, यदि हम और आप दयावान, क्षमावान, करुणावान, अहिंसा धर्म के उपासक हैं तो हम शत्रु से क्षमा माँग लें, एक बार बोलें–मेरे शरीर में रहने वाले जीवाणुओ! मैंने आपको कष्ट पहुँचाया, दिल दुखाया आप मुझे क्षमा कर दो।

असाता को साता में परिवर्तित करने के लिए तथा शत्रुता को मित्रता में रूपान्तरित करने के लिए भक्तामर की आराधना एक सफल उपाय है।

प.पू. आचार्य श्रुतसागर जी मुनिराज को ब्रेन ट्यूमर था मात्र भक्तामर के चित्र ध्यान से ब्रेन ट्यूमर को अड़तालीस दिन के भीतर भक्तामर का अपने आप पर प्रयोग कर स्वयं को स्वस्थ किया।

आप आज पूर्ण स्वस्थ, मोक्षमार्ग प्रकाशी, कुशल श्रमण हैं। आपने भक्तामर स्तोत्र के रत्नचूर्ण से चित्र बनाये। आपकी अनन्य आस्था है। वर्तमान युग के आप मानतुंग हैं। पूज्य श्रुतसागर द्वारा चित्रित चित्रों का संयोजन प्रस्तुत कृति में किया है। उनके प्रति आभार एवं नमन।

स्तोत्र का भावानुवाद पूज्य गुरुवर दीक्षाचार्य शास्त्र कवि विभवसागर जी ने सम्मेद शिखर तीर्थ भूमि पर रचकर हिन्दी विज्ञ श्रोताओं को लाभ दिया। तथा मुझे कृति के संकलन एवं सम्पादन का कठिनतम कार्य सौंपा जिसे मैंने सौभाग्य मानकर किया। मैं पूज्य मानतुंगाचार्य भगवन् को प्रणामकर अपने दादा गुरु विरागसागर महाराज के कर कमलों कृति अर्पण करती हूँ।

श्रुतपंचमी पर्व–2017

विदिशा (म.प्र.)

वर्षायोग 2012 जयपुर (राज.)

श्री गुरुवर ने भक्तामर स्तोत्र पर 48 दिवसीय प्रवचन किए। जिनका अवलोकन मैंने उस समय किया। इस शास्त्र में मूल, प्रवचन, अनुवाद, अन्वयार्थ, भावार्थ, अनुभव, यन्त्र, मन्त्र, दीप मंत्र, जाप मंत्र, ऋद्धि मंत्र, साधना मंत्र आदि को समाहित कर पाठकों के हितार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

मेरा अनुभव है गुरु पसंद से नहीं, पुण्य से मिलते हैं। हमें प्रसिद्धि नहीं, उपलब्धि चाहिए। मैं भावना करती हूँ–गुरुवर शतायु हो, नमोस्तु आचार्य भगवन्!

श्रुत पंचमी, 2019

इन्दौर

संपादकीय

आप्त का परीक्षण

आप्त के मायने हैं-प्रमाणिक, सच्चा, वास्तविक, सार्थक आदि। आप्त की संकल्पना एवं मान्यता के विषय में यदि किसी दर्शन ने कहा है तो वह है-जैनदर्शन। जैनदर्शन ने मात्र आप्त के विषय को कहा है। प्रश्न उठता है-आप्त कहने से क्या प्रयोजन है? आप्त कहने से मात्र प्रयोजन इतना ही है, जो सच्चा और वास्तविक है, वही आप्त है। अर्थात् पूज्य, आदरणीय, समादरणीय, आराध्य, ईश्वर, भगवान, देव आदि। जैनदर्शन ने आप्त को, सच्चे देव वीतरागी भगवान के रूप में प्रस्तुत किया है अर्थात् कहा है। क्योंकि आप्त कहने का प्रयोजन ही मात्र इतना ही है कि जो सच्चा हो वही हमारा सच्चा देव है। और सच्चाई को परीक्षण बिना भी विश्वनीय नहीं बनाया जा सकता है। इसलिये जैनाचार्यों ने सर्वप्रथम आप्त की परीक्षा की, तदुपरान्त उन्हें स्वीकार किया। आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने सच्चे देन की जो स्तुति की है वह भी विचारणीय है। क्योंकि उस स्तुति में उन्होंने जिनेन्द्र देव की परीक्षा की है। परीक्षण इतना ही किया, कि मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ, मेरे ऊपर आया हुआ संकट हट जाये, दूर हो जाये। मुझे पता है कि आप आप्त है और आप्त पुरुष की स्तुति कभी मिथ्या नहीं होती है, लेकिन जनसामान्य को स्पष्ट करने के लिये, समझाने के लिये आपकी परीक्षा आवश्यक है। और देखिये! उन्होंने परीक्षा की भगवान की और भगवान परीक्षा में खरे उतरें। 48 ताले तो ऐसे टूटे जैसे कोई फूल टूटा हो। आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने स्वयं तो भगवान की परीक्षा की है। एवं सभी को परीक्षा करने का उपाय भी बतला दिया, जब भी आपको कोई भय सताये, कोई संकट जा आये, किसी भी प्रकार का रोग आ जाये, किसी भी प्रकार की बाधा सतायें तो आप कुछ मत करना मात्र जिनेन्द्र भगवान का नाम ले लेना, आपका कष्ट, संकट और बाधा दूर हो जायेगी। मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूँ, मैं परीक्षण करके बोल रहा हूँ। देखिये! मैंने जिनेन्द्र भगवान का नाम लिया और ताले टूट गये आप भी ऐसी भक्ति करो, आपके जीवन के भी दुःखों के ताले टूट जायेंगे। आप परीक्षण करो।

दिगम्बराचार्यों ने भगवान की परीक्षा की, फिर उन्हें अपने आराध्य के पद पर विराजमान किया। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने तो भगवान से सीधे वार्तालाप के माध्यम से ही चर्चा कर डाली। आचार्य समन्तभद्र स्वामी और भगवान के बीच में संवाद हो जाता है। भगवान आचाग्र समन्तभद्र स्वामी से कहते हैं कि हे समन्तभद्र! मैं तुम्हारा भगवान हूँ। तुम मुऐ भगवान मानो। तब आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं- यदि आप भगवान है तो निश्चित ही आपमें भगवान होने के नाते अनेक गुण विद्यमान होंगे, वे गुण कौन-से कृपया कर बतलाइये। तब भगवान कहते हैं-

देवागम नभोयान चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥

देखो समन्तभद्र! मेरे पास देवों का आगमन होता है चमर आदि विभूतियाँ विद्यमान है, आकाश में गमन होता है ये सब गुण मेरे पास विद्यमान है और मैं समझता हूँ कि इतने गुण ही पर्याप्त है भगवान होने के लिये। तब आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं-देवों का आगमन तो भगवान के सच्चे भक्तों पर के पास भी होता है, आकाश में गमन मायावीजनों का भी होता है, चमर आदि विभूतियाँ भी अन्य देवों में देखी जाती है। इतने में तो आपको सच्चा देव नहीं मान सकता हूँ। कृपया आप मुझे और कोई गुण बताये, जिससे मुझे सच्चे देव की पहचान में आसानी हो। तब भगवान पुन: कहते हैं-

यह जो आपके शरीरादि का अन्तर्बाह्य महान उदय है अर्थात् अंतरंग में शरीर क्षुधा-तृषा-जरा-रोग-अपमृत्यु आदि के अभाव को और बाह्य में प्रभापूर्ण अनुपम सौन्दर्य के साथ गौर-वर्ण-रुधिर के संचारसहित नि:स्वदेता, सुरभिता और निर्मलता को लिये हुये है जो साथ ही दिव्य है, अमानुषिक है तथा सत्य है, मायादिरूप मिथ्या न होकर वास्तविक है और मायावियों में नहीं पाया जाता है। तब आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं-यदि इसी कारण से हम आपको महान, पूच्य और आप्तपुरुष मान लें, तो यह भी हेतु व्यभिचारदोष से सहित है। क्योंकि रागादि से युक्त स्वर्ग के देवों में भी पाया जाता है। फिर स्वर्ग के देवों को भी सच्चा देव स्वीकार करना पड़ेगा। और ऐसा करने पर सच्चे देव का स्वरूप भंग हो जायेगा। भगवान पुन: कहते हैं कि मैं आपसे कह रहा हूँ कि मैं आपका भगवान हूँ, तीर्थंकर हूँ, ईश्वर हूँ आप इसे ही स्वीकार करो। तब आचार्य कहते हैं-ऐसा भी नहीं हो सकता है। क्योंकि अन्य मत वाले भी अपने आपको तीर्थंकर, भगवान कहते हैं, तब उनको भी स्वीकार करना पड़ेगा और यदि उनको स्वीकार करना पड़ा तो आप ही बताइये! आपके द्वारा रचित आगम और उनके द्वारा रचित आगम भिन्न क्यों हैं? अन्त में भगवान स्वयं आचार्य समन्तभद्र स्वामी से कहते हैं-आप ही बताये कि आपके अनुसार सच्चे देव का स्वरूप क्या है। तब आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं-मेरे अनुसार नहीं, ये मैं जो कहने जा रहा हूँ वह तो शाश्वत है, सर्वकालिक है, परम विशुद्ध स्वरूप वाले सच्चे देव है।

दोषावरणयोर्हानिर्नि:शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय:।।4।।

सूक्ष्मान्तरित-दूरार्था: प्रत्यक्षा: कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वोतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ-संस्थिति:।।5।।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्ति-शास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।।6।।

जिस प्रकार स्वर्ण में किट्टिकालिमा मल लगा हुआ होता है तब वह अशुद्ध होता है और उसे अग्नि रूपी योग्य साधन पर तपाकर शुद्ध किया जाता है। उसी प्रकार से सब जीव विकारों की कालिमा

से अशुद्ध होता है तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अग्नि पर तपाकर परम शुद्ध किया जाता है और उस शुद्ध अवस्था का नाम वीतरागपना है। अर्थात् जो अठारह प्रकार के दोष और आठ प्रकार के आवरणों से रहित हो गये ऐसे परम परमात्मा ही हमारे सच्चे देव है। एवं जो सूक्ष्म, अंतरित और दूरवर्ती पदार्थों को प्रत्यक्ष और अनुमान से जानते हैं वे सर्वज्ञ देव ही सच्चे देव है। एवं जिनके वचन निर्दोष, अविरोधी, युक्ति और आगम के अनुकूल होते हैं वे सच्चे हितोपदेशी होते हैं। अर्थात् वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी इन तीन गुणों से सहित जो है वही हमारे सच्चे देव है, अन्य नहीं। वही आप्त है, शेष नहीं। इसी विषय को आचार्य उमास्वामी महाराज ने कहा है-

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वंदे तद् गुण लब्धये।।

जो मोक्षमार्ग को नेता है अर्थात् हितोपदेशी, जो कर्मरूपी पर्वतों का भेदन करने वाला है अर्थात् वीतरागी, जो विश्व के समस्त पदार्थों को जानने वाला है अर्थात् सर्वज्ञ, मैं उन गुणों की प्राप्ति के लिये उन्हें नमस्कार करता हूँ।

उक्त विषय का मात्र इतना ही तात्पर्य है कि यदि भक्ति की जाये तो सच्चे देव की, क्योंकि यदि मिथ्यादेव की भक्ति कर भी ली तो कोई फायदा होने वाला नहीं। इसलिये आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने सर्वप्रथम यही कहा है-

सम्यक् प्रणमय जिनपाद युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।

अर्थात् मैं सम्यक् तरीके उन जिनेन्द्र भगवान के चरणों में नमस्कार करता हूँ जो मुझे इस संसार समुद्र से बाहर निकालने में समर्थ है अर्थात् बाहर निकालकर मोक्षमार्ग में स्थित कर देंगे। यहाँ किसी सांसारिक इच्छा की प्राप्ति नहीं की है, क्योंकि सांसारिक इच्छा तो स्वयमेव ही पूरी हो जाती है। जिसका लक्ष्य बड़ा होता है उसे छोटी वस्तुयें तो स्वयमेव ही प्राप्त हो जाती है। तीर्थंकर भगवान को संसार के सम्पूर्ण सुख प्राप्त होते हैं और उन्हें छोड़कर ही वे मोक्षपथ पर चल देते हैं। कहने का प्रयोजन है, ये सुख तो मोक्षमार्गी को मोक्षमार्ग पर पढ़ने से स्वयमेव मिल ही जायेंगे। इसलिये यहाँ संसार की नहीं अपितु परमार्थ की बात कही है। जोर जो परमार्थ की बात करें, सही मायने में सच्चा देव है। यहाँ तो आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने भगवान की भक्ति करते हुये अत्यंत ही स्पष्ट ढंग से कहा है- हे जिनेन्द्र देव! आप तो महमारे ऐसे स्वामी हो, जो अपने जैसा भक्त को बना लेते हो। इतना तो स्पष्ट हो रहा है कि आप्त मानने वाला स्वयं आप्त बन जाता है अर्थात् प्रमाणिक, सच्चा और वास्तविक। समझ लेना

चाहिये और जान लेना चाहिये कि जिसे प्रमाणिक बनना है, वह वीतरागी की भक्ति करें और जिसे प्रमाणिक बनना है वह संसारियों की। वीतरागी की भक्ति के प्रभाव से 48 ताले स्वयमेव टूट गये। ये ताले न वीतरागी ने तोड़े और न ही किसी अन्य देव ने, ये ताले तो उनकी पवित्र ओर निर्मल भावनाओं ने, आप्त के प्रति श्रद्धाभाव ने, प्रमाणिक के प्रति आस्था ने तोड़े हैं।

मैं तो मात्र इतना ही कहना श्रेयसकर समझता हूँ कि भगवज्जिनेन्द्र की भक्ति ही हमें भग्वज्जिनेन्द्र बनाती है। यदि हम जिनेन्द्र बनना चाहते हैं तो निश्चित ही इस भक्ति को करें। और यदि हम संसार में रहना चाहते हैं तो स्वतंत्र है किसी की भी संसारी की भक्ति करने के लिये। सारस्वत कवि श्रमणाचार्य री विभवसागर जी महाराज ने जिनेन्द्र भगवान की भक्ति को 48 दिनों तक जनसमूह में प्रसाद के रूप में वितरित किया। कौन कितना ग्रहण कर पाया? यह उसकी सामर्थ थी। परन्तु आचार्यश्री विभवसागर जी ने कमी नहीं की। उन्होंने तो इतना श्रेष्ठ कार्य कर दिया, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ और आने वाले समय में हम साक्षात् उनकी वाणी सुन पाये या सुन पाये परन्तु एक शास्त्र के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया। **भक्तामर शास्त्र** के नाम से प्रकाशित होने वाला यह ग्रन्थ, जिनवाणी का हृदय और सार है। इसके स्वाध्याय से आत्मपरमाणुओं में जो संचार पैदा होगा, वह संचार वैसा ही होगा जैसा साक्षात् जिनेन्द्र भगवान की वाणी को सुनने से होता है। क्योंकि यह एक आचार्य परमेष्ठी की वाणी है और आचार्य परमेष्ठी की वाणी सदा जीवों के कल्याणार्थ ही होती है। मैं अत्यंत ही उपकारी हूँ पूज्य आचार्य महाराज का, जिन्होंने मुझे इतना योग्य समझा और जिनवाणी के इस पुनीत कार्य में मुझे सहयोग प्रदान करने का सौभाग्य प्रदान किया। परम पूज्य मुनि श्री आचरणसागर जी महाराज, मुनि श्री अमृतसागर जी महाराज एव क्षुल्लक श्री अध्यात्मसागर जी महाराज का पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ के आलेखन में बा.ब्र. बहिन रीना दीदी के परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता है, क्योकि यदि उन्होंने लेखन किया होता तो यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत नहीं हो पाता।

अन्त में एक विशेष निवेदन है अवश्य है आप सबसे। समय निकालकर इस ग्रन्थ का एक बार अवश्य स्वाध्याय करें। आपको जिनवाणी के इस अमृत के रसास्वादन में आनंद ही आनंद आरयेगा

–आयतस्तू:
आशीष जैन आचार्य, जयपुर

आचार्य मानतुंग

(कथा–कथन और समय निर्णय)

कथा कथन :

1. आचार्य मानतुंग जी काशीवासी धनदेव ब्राह्मण के पुत्र थे। पहले श्वेताम्बर साधु थे, पीछे दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली, आप दोनों ही आम्नाओं में सम्मानित हैं। राजा द्वारा 48 तालों में बंद किये जाने की कथा इनके विषय में प्रसिद्ध है। इनका समय राजा हर्ष (ई. 608) के समकालीन होने से ईसा की छठीं शताब्दी माना गया है।
2. जैसा कि ''भक्तामर स्तोत्र'' के अन्य कथानकों से ज्ञात होता है, कि यह घटना राजा भोज के समय की है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है – कवि कालीदास व मानतुंगाचार्य में वाद विवाद हुआ जिसमें कालिदास की पराजय होने से उन्हें लज्जित होना पड़ा, जिससे उन्होंने राजा को मानतुंगाचार्य के विरुद्ध भड़का दिया। राजा भोज का राज मद जागृत हुआ। उसने श्री मानतुंगाचार्य को 48 कोठों के भीतर जेलखाने में हथकड़ी व बेड़ी पहनाकर बंद कर दिया और बाहर कड़ा पहरा बैठा दिया। श्री मानतुंगाचार्य जी ने रात्रि में अर्हंत सर्वज्ञ वीतराग श्री आदिनाथ भगवान की भक्ति में लीन होकर स्तोत्र की रचना की। जब उन्होंने 46 काव्य की रचना की तब हथकड़ी व बेड़ी टूट गई और वे 48 कोठों के बाहर आ गए। राजा ने इस चमत्कार को स्वयं जाकर देखा एवं नम्रता से मानतुंगाचार्य के चरणों में नमस्कानर करके अपने अपराध की क्षमा याचना की। आचार्यश्री ने राजा को क्षमा कर दिया और फिर वहाँ से विहार कर गए, (इस कथानक के अनुसार समय ईसा की दशवीं–ग्यारहवीं शताब्दी तय किया जाता है।
3. आचार्य प्रभाचन्द्र ने ''क्रिया–कलाप'' की टीका के अन्तर्गत भक्तामर स्तोत्र टीका की उत्थानिका में लिखा है– ''मानतुंगाचार्य सिताम्बरो महाकवि: निर्ग्रन्थाचायैरपिनीतमहाव्याधि–प्रतिपन्ननिर्ग्रन्थमार्गो भगवन् किं क्रियमामिते ब्रुवाणो भगवता परमात्मनो गुणगणस्तोत्रं विधियतामित्यादिष्ट: भक्तामरेत्यादि।''

अर्थात्– मानतुंग श्वेताम्बर महाकवि थे। एक दिगम्बराचार्य ने उनको व्याधि से मुक्त करा दिया, इससे उन्होंने दिगम्बर मार्ग ग्रहण कर लिया और पूछा कि–भगवन! अब मैं क्या करूँ। आचार्य ने आज्ञा दी कि–परमात्मा के गुणों का स्तोत्र बनाओ। फलत: आदेशानुसार भक्तामर स्तोत्र का प्रणयन किया।

इत्यादि कथा– कथा आचार्य मानतुंग जी के बारे में उपलब्ध होते है।

समय विचार :

1. संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान डॉ. ए.बी. कीथ ने 2 भक्तामर कथा के सम्बन्ध में अनुमान किया है कि कोठरियों के ताले पाशवद्धता संसार बन्धन का रूपक है। इस प्रकार के रूपक छठी–सातवीं शताब्दी में अनेक लिखे गये हैं। वसुदेव–हिन्दी में गर्भवास दु:ख, विषय सुख, इन्द्रिय सुख, जन्ममरण के भव आदि सम्बन्धी अनेक रूपक बनाये हैं। डॉ. कीथ का यह अनुमान यदि सत्य है, तो इसका रचनाकार छठी शताब्दी की उत्तरार्द्ध या सातवीं का पूर्वार्द्ध होना चाहिये। डॉ. कीथ ने यह भी अनुमान किया है कि मानतुंग वाण के समकालीन है।
2. सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने ''सिरोही का इतिहास'' नामक ग्रन्थ में मानतुंग का समय हर्ष कालीन माना है। श्री हर्ष का राज्याभिषेक ई. सन् 608 में हुआ था। अतएवं मानतुंग का समय ई. सन. की 7वीं शताब्दी का मध्य भाग होना संभव है।
3. भक्तामर स्तोत्र के अन्तरंग परीक्षण से प्रतीत होता है कि यह स्तोत्र ''कल्याण मंदिर'' का परिवर्ती है। ''कल्याण–मंदिर'' के रचयिता सिद्धसेन का समय छठीं शताब्द सिद्ध किया जा चुका है।

डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य

साभार : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा

भक्तामर कैसे, कहाँ और क्यों रचाया गया?

मालवा प्रान्त के उज्जैन में धार नगरी के राजा भोज विद्याप्रेमी गुणग्राही संस्कृत के विद्वान् हुए उनके राज्य में विप्र कालिदास मंत्री थे जो विद्या में प्रवीण थे। पं. कालिदास ने कालीदेवी को सिद्ध कर लिया था तथा वचन सिद्धि भी प्राप्त कर ली थी।

एक दिन सेठ सुदंत अपने पुत्र मनोहर को लेकर राजा की सभा में गया। राजा ने पुत्र मनोहर, होनहार बालक को देखकर उसकी पढ़ाई के बारे में पूछा तो सुदंत ने बताया अभी वह महाकवि धनंजय द्वारा रची गई नाममाला पढ़ रहा है। राजा ने नाममाला का नाम पहली बार सुना तो चकित होते हुए कहा हमें भी उस धनंजय से मिलवाइये। विप्र कालिदास मंत्री थे पर उनसे धनंजय की प्रशंसा सुनी न गई और ईर्ष्या का साँप उनके तन पर लोट गया और बोले राजन्! संस्कृत विद्या सिर्फ हम ब्राह्मणों के पास है इन जैनियों के पास ये विद्या नहीं है हम ही लोग इन्हें पढ़ाते हैं। नाममाला धनंजय ने नहीं बनाई इसका मूल नाम ' नाम मंजरी' है, उसे हमने लिखा है ।

एक दिन राजा ने कवि धनंजय को राजदरबार में बुलाया तो कालिदास और धनंजय की बहुत बहस हुई; धनंजय ने कहा यदि तुमने नाममाला लिखी है तो बताइये इसमें क्या लिखा है? इस पर कालिदास चुप रह गये तभी धनंजय ने पूरी नाममाला सुना दी। राजा खुश हुआ और कालिदास ईर्ष्या से भरकर बोले इसके गुरु को कुछ नहीं आता तो इसे क्या आता होगा? धनंजय ने जैसे ही गुरु मानतुंगाचार्य के बारे में अपमानित शब्द सुने तो आग बबूला हो गया वह तुरंत लाल आँख करते हुए बोला यदि आप विद्वत्ता रखते हैं तो हमारे गुरु से बाद में, पहले हमसे शास्त्रार्थ करके देख लो और शास्त्रार्थ हुआ जिसमें कालिदास पराजित हुए तो कालिदास ने आ. मानतुंग से ही शास्त्रार्थ करने के लिए कहा।

प्रात:काल आ. मानतुंग जी के पास राजाज्ञानुसार कुछ श्रेष्ठीगण निवेदन करने गये तो आचार्य श्री ने कहा– हम श्रावकों के घर दो काम से जा सकते हैं एक आहार करने दूसरा किसी की समाधि कराने, शेष समय में श्रावक ही दर्शनार्थ आते हैं अतः हम जिनागम का उल्लंघन नहीं कर सकते इस पर कुछ लोग बोले महाराज, राजा दण्ड भी दे सकता है, आ. श्री बोले हमें दण्ड उपसर्ग सभी स्वीकार हैं लेकिन जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं।

राजसभा में यह सुनकर कालिदास, राजाभोज से बोले–देखा, ज्ञान हीं नहीं है अन्यथा आये क्यों नहीं। ढोंगी साधु ऐसे ही होते हैं ये माया का जाल फैलाकर भोली भाली अज्ञानी समाज को ठगते हैं। इस पर राजा ने कुपित होकर आ. मानतुंग जी को जबरदस्ती लाने को कहा जब लोग जबरन लाने लगे तो आचार्य श्री ने उपसर्ग जानकर मौनधारण कर लिया। राजा भोज के द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर भी जब आचार्य श्री कुछ न बोले तो कालिदास ने कहा ये महामूर्ख, भयभीत हैं इन्हें कर्नाटक से देश

निकाला दिया था इसलिये ये यहाँ पर रह रहे थे। राजा ऐसे वचन सुनकर क्रोधित हो उठा और आ. श्री को हथकड़ी और बेड़ियों से बाँधकर अड़तालीस कोठों के भीतर कालकोठरी में बंद करवा दिया और मजबूत ताले लगवाकर पहरेदारों को बिठा दिया। तीन दिन तक बंदीगृह में निराहार होते हुए भी समता धारण करते हुए अडिग–अकंप थे चौथे दिन उनके मुख से आदिनाथ भगवान् की स्तुति मुखरित हो गई। जैसे–जैसे स्तुति छंदों में आगे बढ़ती गई उधर लगे हुए ताले स्वयमेव टूटते गये। इसी स्तोत्र का नाम भक्तामर स्तोत्र या आदिनाथ स्तोत्र पड़ गया। ताले खुलते ही मुनिराज बाहर आ गये, बाहर पहरेदार देखकर घबरा गये उन्हें पकड़कर बंद कर दिया, थोड़ी देर बाद फिर ऐसा ही हुआ, पहरेदारों ने फिर बंद कर दिया। तीसरी बार फिर वैसा ही हुआ तो पहरेदारों ने राजा भोज को यह बात खुली आँखों से देखने को कहा। राजा ने जब ऐसा देखा तो राजा का हृदय तक काँप गया और अपने आप को मृत जैसा महसूस करने लगे। राजा की यह दशा देख कालिदास ने राजा को धैर्य बँधाया और स्वयं कालिका स्तोत्र पढ़ने लगा तभी सभा में काली देवी चण्डी का विकृत रूप लिए प्रकट हुई; मुनिराज शांत स्वभाव में बैठे थे तत्काल उनके पास चक्रेश्वरी देवी प्रकट हो गई। चक्रेश्वरी को देखते ही काली देवी काँप उठी क्योंकि सम्यग्दृष्टि देवी में मिथ्यादृष्टि देवी से हजारों गुनी ताकत होती है। चक्रेश्वरी की एक ललकार के सामने काली चण्डी मुनिराज के पैरों को पड़कर गिड़गिड़ाने लगी, क्षमा माँगने लगी। मुनिराज ने क्षमा कर दिया तथा वह मुनिराज की स्तुति करके अदृश्य हो गई।

मानतुंग महाराज की तपस्या और उनका प्रताप देखकर राजाभोज और कालिदास ने पश्चाताप की ज्वाला में जलते हुए आत्मालोचना व आत्मनिंदा करते हुए सबके सामने क्षमा माँगी व श्रावक के व्रत धारण करके खूब धर्म का प्रचार–प्रसार किया और भक्तामर की महिमा को जन–जन तक पहुँचाकर उसे अजर–अमर बना दिया। आ. मानतुंग जी श्वेताम्बर संत थे यथार्थता जानकर के स्वयं दिगम्बर संत हुए आपके गुरु अजितसेन जी ने हैं। भक्तामर धार नगरी में राजा भोज के समय में पंचमकाल की सातवीं शताब्दी में कैदखाने में रचाया गया लेकिन कैद से मुक्त कराने वाला है। सभी संत प्रातः उठकर स्तुति करते हैं इसलिये वह स्तुति ही भक्तामर स्तोत्र बन गया। संस्कृत के ज्ञाता होने के कारण यह संस्कृत में रचाया गया सभी स्तोत्रों में यह भक्तामर सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। और यह सब कार्य सिद्ध कराने वाला, सर्व विघ्नविनाशक–ऋद्धि सिद्धि और बुद्धि को प्रखर करने वाला स्तोत्र है।

***

प्रिय आत्मन्!

शुभोपयोगी संकलन

आगमाभ्यास की

श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

शुभोपयोगी चिंतन

अन्तरात्मा की

श्रेष्ठतम कृति है।

शुभोपयोगी

अन्तर्मुखी चर्या

गुरु सान्निध्य की

श्रेष्ठ सफलता है।

ज्ञान और वैराग्य

सम्यक् दृष्टि की

आत्मीय शक्ति है।

जुग–जुग जिओ गुरुवर!

नमोऽस्तु आचार्य भगवन!

आर्यिका ओम्श्री माताजी

विनयांजलि

मेरा प्रथम नमन् मेरी आस्था के परम पुंज परम पूज्य श्रद्धेय मुनि श्री प्रज्ञासागर जी महाराज के श्री चरणों जिन्होंने मुझमें संस्कारों का बीजारोपण किया उन संस्कारों के बीजों को परम पूज्य श्रमणाचार्य डॉ. विभवसागर जी महाराज ने अपने वात्सल्य के जल से व ज्ञान की खाद से सींचा। इस पंचमकाल में चतुर्थकाल सी चर्या का पालन करने वाले श्रमणाचार्य के श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन् जिन्होंने अपनी अनुकम्पा का ऐसा वरदहस्त मेरे शीश पर रखा कि मेरे भटके हुये जीवन को सन्मार्ग मिल गया। गुरुवर जब सिंहासन पर बैठकर प्रवचन देते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सचमुच तीर्थंकर भगवान के समवशरण में दिव्य ध्वनि खिर रही हो।

गुरुदेव तत्व के ज्ञाता है आपके श्रीमुख से जिनवाणी का पान करके भक्त जन परमानन्द की अनुभूति करते हैं आपकी वाणी जग कल्याणकारी है।

गुरुदेव आपके प्रवचन से हमारी आत्मा का प्रदेश-प्रदेश अलौकिक आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करता है।

आपका लेखन भक्ति को समेटे हुए है, आपकी काव्य कालिन्दी अपूर्व है। आप सुकोमल पदावली के धनी है, आपका शब्द ललित्य व छन्द साहित्य अद्वितीय है। मैं और मेरा परिवार, मेरी माताजी सुनिता जैन, धर्मपत्नि पूजा जैव एवं बेटी युक्ति आपके परम शिष्य है जो नित प्रतिदिन आपकी भक्ति में लीन रहते है।

हे प्रभो दुनिया से क्या माँगू,
चलो आपसे ही माँग लेता हूँ।
अरे आपसे क्या माँगू,
आपको ही माँग लेता हूँ।।

पहले सम्यक् की नींव भरी, फिर ज्ञान भित्ती ऊँची करी।
शुभ ज्ञान मयी दीवारों पर, चारित्र छत्र निर्मित की।
यह मोक्षमहल के शिल्पकार, विभवसागर जिनका नाम।

गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ! गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ!! गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ!!!

सौरभ जैन

संस्थापक एवं अध्यक्ष-श्रमण श्रुत सेवा संस्थान
मंत्री-श्री दिगम्बर जैन मुनि सेवा संघ, शक्ति नगर, जयपुर

मेरा अनुभव

गुरु पसंद से नहीं

पुण्य से मिलते हैं।

हमें प्रसिद्धि नहीं

उपलब्धि चाहिये।

गुरुवर शतायु हो

गुरुवर दीर्घायु हो...

नमोऽस्तु आचार्य भगवन्...

–बा.ब्र. रीना दीदी

आचार्य विभवसागर जी महाराज के संघस्थ दीक्षित-साधुगण

क्र.	साधुगण	दीक्षा तिथि
	श्रमण विभास्वरसागर जी महाराज	**गुरु-आचार्य विरागसागर जी**
1.	श्रमण आचरणसागर जी महाराज	10.02.2011, हटा (म.प्र.)
2.	श्रमण अध्ययनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
3.	श्रमण आवश्यकसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
4.	श्रमण अध्यापनसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
5.	श्रमण अर्हंतसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
6.	श्रमण आचारसागर जी महाराज	04.12.2014, सागर (म.प्र.)
7.	श्रमण शुद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
8.	श्रमण सिद्धात्मसागर जी महाराज	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
9.	श्रमणी अर्हंश्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
10.	श्रमणी ओम् श्री माताजी	14.04.2016, शिखरजी (झारखण्ड)
11.	श्रमणी समिति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
12.	श्रमणी संस्कृत श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
13.	श्रमणी संस्कृति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
14.	क्षुल्लिका ह्रीं श्री माताजी	18.11.2015, भिलाई (छ.ग.)
15.	क्षुल्लिका आराधना श्री माताजी	17.01.2016, राजिम (छ.ग.)
16.	क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी	16.11.2016, जैतहरी (म.प्र.)
17.	क्षुल्लिका संस्तुति श्री माताजी	16.02.2018, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

क्र.	समाधिस्थ साधुगण	समाधि तिथि
1.	श्रमण अध्यात्म सागर जी	2015, दुर्ग (छ.ग.)
2.	श्रमण अनशन सागर जी	2017, शिरड, शहापुर (महा.)
3.	श्रमण समाधिसागर जी महाराज	2018, मुम्बई (महा.)
4.	श्रमणी विनिर्मला श्री माताजी	2007, नागपुर (महा.)
5.	श्रमणी अनुकम्पा श्री माताजी	2011, सागर (म.प्र.)
6.	श्रमणी प्राज्ञा श्री माताजी	2018, बगरोही (म.प्र.)
7.	क्षुल्लिका विदेह श्री माताजी	2001, कोतमा (म.प्र.)
8.	क्षुल्लिका अर्हद् श्री माताजी	2014, सागर (म.प्र.)

भक्तामर शास्त्र

कृपया ध्यान दें–

* शास्त्रजी के प्रारंभ में मंगलाचरण करें।
* शास्त्रजी के पृष्ठ परिमार्जन करके पलटायें।
* शास्त्रीजी को विनयपूर्वक, जीवरहित, उच्चस्थान पर विराजमान करें।

अनुक्रमणिका

1. तीर्थंकर आदिनाथ
2. आशीर्वाद – आचार्य श्री विरागसागर जी
3. प्रस्तावना – आचार्य विभवसागर जी
4. प्रवचनीय – आचार्य विभवसागर जी
5. भक्तामर शुद्ध पढ़ने के लिये आवश्यक जानकारी – आचार्य विनम्रसागर जी
6. संवेदना – मुनि आचरणसागर जी
7. वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सफल प्रयोग – आर्यिका अर्हंश्री माताजी
8. संपादकीय – आशीष जैन आचार्य
9. आचार्य मानतुङ्ग परिचय – डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य
10. भक्तामर कैसे, कहाँ और क्यों रचाया गया

शीर्षक	फल	पृ.क्र.
1. जिनचरण वन्दन	सर्व विघ्न विनाशक	2
2. स्तुति का संकल्प	सर्व विघ्न विनाशक	13
3. लघुता की अभिव्यक्ति	सर्व सिद्धि दायक	22
4. जिनदेव के अवर्णनीय गुण	जल–जन्तु भय मोचक	35
5. भक्ति की प्रेरणा	नेत्र रोग संहारक	42
6. स्तुति में भक्ति ही कारण	सरस्वती विद्या प्रसारक	53
7. पापविनाशक जिनवर स्तुति	सर्व क्षुद्रोपद्रव निवारक	61
8. जिनवर की प्रभुता का प्रभाव	सर्वारिष्ट योग निवारक	73
9. प्रभु नाम ही पापनाशक	अभीप्सित फलदायक	85
10. समपद दायक भक्ति	उन्मत्त कूकर विष निवारक	97
11. निर्निमेष दर्शनीय स्वरूप	आकर्षण बढ़ाने वाला	109
12. अद्वितीय अनुपम सौन्दर्य	वांछित रूप प्रदायक	118
13. चन्द्रातिशायी जिनमुख	लक्ष्मी सुख दायक	127
14. त्रिभुवनव्यापी गुणकोष	आधि–व्याधि नाशक	138
15. मेरु सम अविचल ध्यान	सम्मान सौभाग्य संवर्द्धक	151
16. अद्वितीय दीपक	सर्व विजय दायक	165
17. सूर्यातिशायी जिनसूर्य	सर्व रोग निरोधक	179
18. अद्भुत मुखचन्द्र	शत्रु सैन्य स्तंभक	192
19. अन्धकारनाशक जिनमुख	उच्चाटनादि रोधक	207
20. आप जैसा ज्ञान अन्य देवों में कहाँ	संतान संपत्ति सौभाग्य प्रदायक	218

21. अन्त में पाया सो ठीक है	सर्व सौभाग्य प्रदायक	232
22. आपकी माता धन्य है	भूत पिशाचा बाधा निरोधक	245
23. मृत्युंजयी श्रेयसपथ जिनदेव ही	शिरोरोग नाशक	258
24. विभिन्न नाम आपके ही	बुद्धि-बुद्धि प्रदायक	268
25. ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और बुद्ध आप ही	दृष्टि दोष निरोधक	280
26. आपको नमस्कार हो	अर्द्ध शिर पीड़ा विनाशक	294
27. दोष रहित गुणों के स्वामी	शत्रु उन्मूलक	307
28. अशोक वृक्ष प्रातिहार्य	सर्व मनोरथ पूरक	320
29. सिंहासन प्रातिहार्य	नेत्र पीड़ा विनाशक	334
30. चँवर प्रातिहार्य	शत्रु स्तंभक	348
31. छत्रत्रय प्रातिहार्य	राज्य सम्मान दायक	355
32. देव-दुन्दुभि प्रातिहार्य	ग्रहण संहारक	364
33. पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य	सर्व ज्वर संहारक	378
34. भामण्डल प्रातिहार्य	गर्भ संरक्षक	390
35. दिव्यध्वनि प्रातिहार्य	ईति-भीति निवारक	406
36. विहार में स्वर्ण कमलों की रचना	लक्ष्मी प्रदायक	417
37. आप जैसी विभूति अन्यों में नहीं	दुष्टता प्रतिरोधक	430
38. हस्तिमय निवारक भक्ति	हस्तिमदभंजक	445
39. सिंहमय-मुक्त जिनेन्द्र-भक्त	सिंह शक्ति संहारक	447
40. नाम स्मरण से दावाग्नि	सर्वाग्निशामक	461
41. भुजंग भयहारी नाम नागदमनी	भुजंग भय भंजक	463
42. संग्राममय विनाशक जिनकीर्तन	युद्ध भय विनाशक	479
43. शरणागत की युद्ध में विजय	सर्व शांति दायक	489
44. नाम स्मरण से निर्विघ्न समुद्र यात्रा	सर्वापत्ति विनाशक	495
45. व्याधि विनाशक चरण रज	जलोदरादि विनाशक	508
46. नाम जप से बन्धन मुक्ति	बंधन विमोचक	521
47. सर्व-भय निवारक जिन-स्तवन	अस्त्र शस्त्रादि निराधक	535
48. स्तुति का फल	मोक्ष लक्ष्मी प्रदायक	537
49. पारसनाथ मुक्ति पर्व		550
50. रक्षाबंधन पर्व		562
51. स्वतंत्रता दिवस		573
52. भक्तामर स्तोत्र के ऋद्धि मंत्र		584

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।। ॐ जय जय जय नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।

अविरल–शब्दघनौघ–प्रक्षालित–सकलभूतल–मलकलंक ।

मुनिभि–रुपासित–तीर्थाः सरस्वती हरतु नो दुरितान् ।।

अज्ञान–तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन–शलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

श्री परमगुरवे नमः। श्री परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोध–कारकं पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीभक्तामरस्तोत्रं नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर–ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाःप्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार–मासाद्य आचार्य श्रीमानतुंगस्वामिना विरचितं। तदुपरि प्रवचनटीका भक्तामर शास्त्रम् श्रोतारः सावधानतया श्रण्वन्तु।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।

मंगलं कुंदकुंदाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलं।।

सर्वमंगल–मांगल्य, सर्वकल्याणकारकम्।

प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

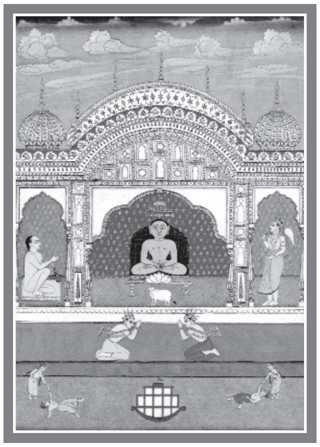

जिनचरण वन्दन

भक्तामर–प्रणत–मौलि–मणि–प्रभाणा–
मुद्योतकं दलित–पाप–तमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।1।।

अन्वयार्थ :

भक्त	– भक्ति करने वाले	अमर	– देवताओं के
प्रणत	– विशेष रूप से झुके हुए	मौलिमणि	– मुकुट रत्न के
प्रभाणाम्	– कांति के	उद्योतकम्	– प्रकाश को करने वाले
पाप	– पाप रूपी	तमो	– अंधकार के
वितानम्	– विस्तार को	दलित	– नष्ट करने वाले
युगादौ	– युग के प्रारंभ में	भवजले	– संसार समुद्र में
पतताम्	– गिरते हुए,	जनानाम्	– प्राणियों को
आलम्बनम्	– सहारा देने वाले	जिन	– जिनेन्द्रदेव के
पादयुगं	– चरण युगल को	सम्यक्	– अच्छी तरह से
प्रणम्य	– नमस्कार करके।		

भावार्थ :

भक्ति में नम्रीभूत देवों के मुकुट मणियों की शोभा को बढ़ाने वाले, पाप रूप अंधकार को हरने वाले, तथा भवसागर में डूबते हुए प्राणियों को सहारा देने वाले, हे आदिनाथ प्रभु! आपके चरणों में भली भांति भाव सहित नमस्कार करके।

सर्व विघ्न विनाशक

भावानुवाद

भक्तामर नमते प्रभु पद में, बड़े मुकुट शोभा।
पाप रूप अंधियारा नाशे, प्रभु पद की आभा।।
भव सागर में डूब रहे को, आप सहारा हो।
हे आदीश्वर! आदि जिनेश्वर! नमन हमारा हो ।।1।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं विश्वविघ्नहराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

मंगलाचरण

जिनपद वन्दन

भक्तामर–प्रणत–मौलि–मणि–प्रभाणा–
मुद्योतकं दलित–पाप–तमो–वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद–युगं युगादा–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।1।।

भावार्थ– भगवान आदिनाथ के चरण युगल में जब देवगण भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट में जड़ित मणियाँ प्रभु के चरणों की दिव्य कान्ति से और अधिक दैदीप्यमान हो जाती हैं। भगवान् के चरणों का स्पर्श ही प्राणियों के पापों का नाश करने वाला है तथा जो उन चरण युगल का आलम्बन लेते हैं, वे संसार समुद्र से पार हो जाते हैं। इस युग के प्रारंभ में धर्म का प्रवर्तन करने वाले प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के चरण–युगल में विधिवत् प्रणाम करता हूँ।

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्मबन्ध विमोचिनी, संवरपथ प्रदायिनी, निर्जरा निर्झरणी,मोक्षमहलधारिणी, पाप–ताप संतापहारिणी, विश्वकल्याणकारिणी जिनवाणी माँ! तेरी जय हो! सदा विजय हो। तेरे विशाल नभ में, श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन्!

अरिहंतादिसु भत्ति सम्मत्तं।।

अरिहंत आदि पंच परमेष्ठियों में भक्ति होना **सम्यक् दर्शन** है। यह सम्यक् दर्शन तीन लोक में महान है। जिस सम्यक्त्व के समान संसार में कोई उपकारी नहीं है, ऐसा यह सम्यक्त्व जिससे उत्पन्न होता है उसका नाम है **जिनेन्द्र भक्ति**। जिनेन्द्र भक्ति आत्मा में उत्पन्न होती है। जिनेन्द्र भगवान के गुणों के प्रति आत्मा में जो भावना, आस्था, श्रद्धा, अभिव्यक्ति जन्म लेती है, उसे **जिनेन्द्र भक्ति** कहते हैं। यह जिनेन्द्र भक्ति असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा कराती है। जिनभक्ति के प्रभाव से जन्म–जन्म के संचित पाप दूर हो जाते हैं। जैसे–सूरज की किरण अंधकार का नाश कर देती है। वैसे ही जिनेन्द्र भक्ति कर्मों का नाश कर देती है। जैसे–अग्नि की चिनगारी कपास के ढेर को जला देती है, वैसे ही जिनेन्द्र भक्ति पाप कर्मों को जला देती है।

प्रिय आत्मन्!

जीव सदा से कर्मबद्ध है। जीव और कर्म का संबंध अनादि से चला आ रहा है। कभी कर्मों के अनुसार जीव चलता है, तो कभी जीव कर्मों को अपने अनुसार चला देता है।

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।।

कर्म एक ऐसा बैरी है जो भव–भव से रुलाता आ रहा है। कर्मोदय से नाना विपदायें, आपदायें, विपत्तियाँ आकर खड़ी हो जाती हैं। परिवार में रहते हुये, समाज में रहते हुये, कब–कौन से कर्म का उदय आ जाये पता नहीं? कभी मानसिक वेदना हो जाती है, कभी वाचनिक वेदना हो जाती है, कभी कायिक वेदना हो जाती है, कभी आधि–व्याधि होती है। इन सबसे मुक्ति पाने का क्या उपाय है? आचार्यों ने श्रावकों के लिये सर्वोत्तम साधन बताया है– जिनभक्ति। जिनभक्ति एक ऐसा आलम्बन है, जो सहजता से लिया जा सकता है। जब हमारे ऊपर संकट आये तो हम क्या करें? हम देखें कि जब आचार्य मानतुंग स्वामी पर संकट आया, उन्होंने क्या किया? जब आचार्य कुमुदचंद्र स्वामी पर संकट आया तो उन्होंने क्या किया? हम पूज्य पुरुषों के चरित्र को जब पढ़ते हैं, तब–तब हमें ज्ञात होता है, कि संकट के समय में क्या करना चाहिये? जब आचार्य मानतुंग स्वामी जेल में कैद थे तो उन्होंने लोहे के हथौड़े को नहीं उठाया। वह जानते थे कि ताले तोड़ने के लिये पिच्छी, कमण्डलु को छोड़कर के लोहे के हथौड़े को उठाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मुनि का धर्म लोहे के हथौड़े को उठाना नहीं है। लोहे का बल कमजोर हो सकता है। परन्तु श्रद्धा का बल कमजोर नहीं। श्रद्धा का बल एक ऐसा बल होता है, जिस बल के आगे लोहे का बल कमजोर हो जाता है। इसलिये उन्होंने श्रद्धा के बल पर भक्तामर स्तोत्र की रचना की। सत्य है, श्रद्धा का बल सर्वश्रेष्ठ एवं अदृश्य बल होता है।

प्रिय आत्मन्!

आस्था का बल भीतर से पुकार उठा । प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी की आराधना में लवलीन हो गये। चित्त भक्ति में लवलीन हो गया। तन जेल में था लेकिन मन भगवान में लवलीन। शरीर कैदखाने में था लेकिन आत्मा प्रभु के गुणगान में लवलीन थी।

देखने वाले देख रहे है, आचार्य मानतुंग स्वामी जेल में है, लेकिन आचार्य मानतुंग स्वामी देख रहे हैं कि मैं तो प्रभु की भक्ति में लवलीन हूँ। दिख रहे हैं अड़तालीस ताले के अंदर कैद, लेकिन वह कह रहे हैं– आत्मा का स्वभाव कैद होना है ही नहीं, आत्मा का स्वभाव ताले में बंद होना है ही नहीं। आज तक इस आत्मा को कौन कैद कर पाया है? मेरा कर्म उदय ही मुझे कैद कर पाया है और

कर्म उदय जब शांत हो जायेगा तो अपने आप मैं जेल से निकल जाऊँगा। हे प्रभु! आप शरीर की कैद से निकलकर सिद्धालय पहुँच चुके तो क्या मैं जेल की कैद से बाहर नहीं आ सकता? जब आप कर्मों के एक सौ अड़तालीस तालों को तोड़ चुके और सिद्धालय चले गये, तो क्या आपके भक्त के अड़तालीस ताले नहीं टूटेंगे? ताले अवश्य ही टूटेंगे, मैं मुक्त हो जाऊँगा।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य मानतुंग स्वामी जिनभक्ति में लवलीन हो, प्रभु का ध्यान कर रहे हैं। संकट में आर्त–रौद्रध्यान नहीं किया जाता है। आज की स्थिति यह है कि जरा भी आपत्ति आती है और हम आर्त–रौद्र ध्यान करने लगते हैं। तनाव करने लगते हैं, तनाव में बिस्तर पकड़ते हैं लेकिन हमारे आचार्य ने तनाव नहीं किया, भगवान का गुणगान किया। जानते थे, पुण्य के हेतु जिन भगवान हैं, पाप के निवारक जिन भगवान हैं। अड़तालीस तालों को खोलने की चाबी तनाव नहीं है, भक्ति है, ध्यान है, और धर्मध्यान में लवलीन हो गये।

प्रिय आत्मन्!

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के विषय में ऐसा कहा–

पूजा कोटि समं स्तोत्रम्।।

एक करोड़ पूजा करने का जितना फल मिलता है उतना फल एक स्तोत्र पढ़ने का मिलता है। भक्तामर स्तोत्र जैन दर्शन के समग्र स्तोत्रों में सर्वोच्च कोटि का स्तोत्र है। दिगम्बर परम्परा हो या श्वेताम्बर परम्परा हो, दोनों परम्पराओं में इस स्तोत्र का नियमित पारायण किया जाता है।

मैं तेरह वर्ष की उम्र में भक्तामर स्तोत्र पढ़ने लगा था। सोलह वर्ष की उम्र में भक्तामर के अड़तालीस श्लोक याद हो गये थे। सत्रह वर्ष की उम्र में अड़तालीस छंदों की मंगलगीता याद हो गई थी। यह सौभाग्य रहा मेरा। यदि मैं गत जीवन को देखता हूँ, तो जहाँ पर जन्मा हूँ, वहाँ पर मात्र तीन जैन के घर थे। लेकिन सौभाग्य किसे कहाँ ले जाये? वहाँ से चलकर के दस साल की उम्र में घर को त्याग करके मैं संस्कृत विद्यालय मोराजी सागर पहुँचा। यहाँ उपस्थित प्राचार्य शीतलचन्द्र जी जैसे विद्वान् जहाँ पर पढ़े हैं, उसी विद्यालय में मुझे पढ़ने को मिला। कक्षा छठी में बाल–बोध पढ़ा, उम्र ग्यारह वर्ष थी। कक्षा सातवीं में रत्नकरण्डक श्रावकाचार पढ़ा, उम्र बारह वर्ष की थी। कक्षा आठवीं में तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ा, उम्र तेरह वर्ष की थी। कक्षा नवमीं में पुरुषार्थ सिद्धि उपाय पढ़ने का सौभाग्य मिला, उम्र चौदह वर्ष थी। कक्षा दसवीं में सर्वार्थसिद्धि को पढ़ा, उम्र पंद्रह वर्ष थी। कक्षा ग्यारहवीं में जीवकाण्ड पढ़ा, उम्र सोलह

वर्ष थी। कक्षा बारहवीं में कर्मकाण्ड में प्रवेश किया, उम्र सत्रह वर्ष थी। जब मैं धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष एवं संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष में तत्त्वार्थ राजवार्तिक पढ़ रहा था, अठारह वर्ष का था। उसी समय विद्यालय में गुरुदेव विरागसागरजी के उपसंघ का चातुर्मास हुआ, चातुर्मास की फलश्रुति, दोपहर का मंच संचालन मैं करता था। जुड़ाव अच्छा हुआ और जुड़कर के ऐसा जुड़ा कि जीवन में प्रथम बार आहार दिया, गाँव का था, डर लगता था, बड़े लोगों के बीच में कैसे पहुँचें? प्रथम बार आहार दान दिया, उसके बाद उसी दिन आहार को जो कपड़े पहनें, उसी दिन जो नियम लिये, उसके बाद, सीधे मोक्षमार्ग पर आ गया।

प्रिय आत्मन्!

मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ और आज गुरु की कृपा से आपके बीच में हूँ। यहाँ तक पहुँचा। भक्तामर स्तोत्र मेरे जीवन का बहुत प्रिय स्तोत्र रहा। मैंने अनेक बार इसका महत्त्व अनुभव किया है, मैं कर्नाटक की यात्रा पर था। विहार में स्थान पहले से मालूम नहीं होता है कि स्थान कैसा है? क्या है? एक स्थान पर मेरा प्रवेश हुआ। मुझे पंचायत के भवन में ठहरा दिया जो लम्बे समय से नहीं खुला था। श्मशान भूमि पर, गाँव के बाहर बना था, सरकारी जगह, वहाँ पर रात्रि में सोते समयमैं देख रहा हूँ कि चितायें जल रही है, कोई किसी को चटाई उठाकर फेंक रहा है, सब साधु सो रहे। कोई साधु उठकर कहते हैं– महाराज! आप हमारी चटाई क्यों फेंक रहे हैं? मैं जागा रात्रि में बारह बजे और मैंने भक्तामर स्तोत्र का पाठ शुरु किया सुबह हुई, सबने अपनी आपबीती कहानी सुनाई। मैंने कहा– बारह के बाद तो कुछ नहीं हुआ। बोले– बारह के बाद कुछ नहीं हुआ। बोले–आपने क्या किया था? मैं बोला– मैंने भक्तामर का पाठ किया था। सभी हर्षित हुये, भक्तामर पर श्रद्धा बढ़ी।

प्रिय आत्मन्!

भक्तामर स्तोत्र का मैंने अनेक बार चमत्कार देखा है, अनेक बार पढ़ा है। इस स्तोत्र को एक भी बार पढ़ लिया जाये तो घर की विपदायें दूर हो जाती हैं। इस स्तोत्र के प्रभाव से बड़े–बड़े रोग, बड़ी–बड़ी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। मन के विकल्प इस स्तोत्र को पढ़ने से दूर चले जाते हैं। जरूरी नहीं कि अड़तालीस काव्य ही पूरे पढ़े जायें। यदि कोई पहला काव्य भी पढ़ता है तो उससे भी कार्यसिद्धि होती है। वर्तमान में भक्तामर स्तोत्र के जो ऋद्धि मंत्र हैं, उनकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। ये सबसे महान् शक्ति वाले ऋद्धि मंत्र हैं, मैं तो प्रतिदिन शांतिमंत्र में करवाता हूँ।

भक्तामर स्तोत्र की शक्तियों के विषय में आचार्य कहते हैं– एक–एक अक्षर में इतनी शक्ति है

कि एक लाख योजन तक प्रभाव डाल सकती है। एक योजन बारह किलोमीटर का,अर्थात् बारह लाख किलोमीटर तक प्रभाव पड़ेगा। यहाँ पर भक्तामर स्तोत्र पढ़ा जाये और बारह लाख किलोमीटर दूर बैठे व्यक्ति और वस्तु पर प्रभाव पड़ सकता है।

प्रिय आत्मन्!

मैंने इसका प्रभाव अनेक बार देखा है, अनुभव किया है, इसलिये जो उपलब्धि मुझे हुई है उस उपलब्धि से मैं आपको जोड़ना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ, यदि इस स्तोत्र ने मुझे कष्टों में सहायता दी है, इस स्तोत्र ने मुझे विपदाओं में सहयोग दिया है, इस स्तोत्र ने मुझे बुद्धि दी है, विवेक दिया है, चातुर्य दिया है, तो आपको भी दूँ क्योंकि इस स्तोत्र का ये महान् फल है। चौबीसों घंटे इसकी आराधना हो सकती है। तो क्यों न यह स्तोत्र आपको सिखायें, आप सीखें और आप उससे लाभ उठायें। यह वर्षायोग का पावन योग और पावन स्तोत्र शुभोपयोग बनायेगा।

यह पावन स्तोत्र भक्ति का स्रोत बहायेगा, स्तुतियों का स्रोत बहायेगा। जिस भक्ति के स्रोत में पाप कर्म बह जायेंगे, कषायें बह जायेंगी, राग का मैल बह जायेगा, द्वेष का मैल बह जायेगा।

प्रिय आत्मन्!

यह परम स्तोत्र है। वर्ष में प्रतिदिन प्रयास करते हैं, लगभग सौ दिन तो सुबह से भक्तामर का पाठ कर लेते हैं। ऐसा महामंगलकारी स्तोत्र। स्तुतियों के समुदाय को स्तोत्र कहते हैं। यह एक स्तुति नहीं है। इसे आदिनाथ की भी स्तुति कह सकते हैं, और चौबीसों भगवान की भी कह सकते हैं, क्योंकि जो आदिनाथ में गुण हैं वही गुण महावीर में हैं, वही गुण पारसनाथ में हैं। अनंतानंत सिद्ध भगवान हो चुके हैं। उन अनंतानंत सिद्धों में जो गुण हैं वे गुण आदिनाथ में हैं। जो आदिनाथ में है वहीं गुण अनंतानंत सिद्धों में हैं। यह स्तोत्र अरिहंतों का स्तोत्र है, सिद्धों का स्तोत्र है।

प्रिय आत्मन्!

अर्हद् भक्ति तीर्थंकर प्रकृति को बाँधने वाली बताई है।

आचार्य कहते हैं–

भत्तीए जिणवराणं, खीयदि जं पुव्वं संचियं कम्मं।।

कुंदकुंद स्वामी कहते हैं– जिनेन्द्र भक्ति पूर्व संचित कर्मों को नष्ट करती है।

एकापि समर्थोयं, जिनभक्ति–दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।।

तुम्हारे पास कुछ हो, न हो, ज्ञान हो, न हो, चारित्र हो, न हो, परन्तु मात्र जिनेन्द्र भगवान की भक्ति अकेली समर्थ है, दुर्गति को रोकने के लिये। यदि तुम भक्तामर स्तोत्र पढ़ते हो तो मैं कह सकता हूँ कि आपकी कभी नरक गति नहीं हो सकती, कभी तिर्यंच गति नहीं हो सकती, कभी दुर्गति नहीं हो सकती। नियम से देव गति ही होगी।

भक्तामर स्तोत्र का एक काव्य भी पढ़ा जाये तो आचार्य कहते हैं– एक समय कम अड़तालीस मिनिट तक विशुद्धि बनी रहती है। एक अंतर्मुहुर्त तक विशुद्धि रहती है कितने समय तक? अड़तालीस मिनिट में एक समय कम तक भक्तामर का एक काव्य पढ़ा। अंतर्मुहुर्त तक विशुद्धि रहती है इसलिये पूरी भक्ति के साथ, पूरी श्रद्धा के साथ, पूरी तन्मयता के साथ, निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व, सानंद होकर के भक्तामर स्तोत्र की आराधना करने बैठ जाओ। मन की मनोकामनायें स्वतः सिद्ध हो जाती हैं। जैसे– वृक्ष के नीचे जाने पर छाया स्वतः मिल जाती है, वैसे ही इस स्तोत्र की आराधना करने से कार्य सिद्धि हो जाती है।

इष्टकार्य साधक स्तोत्र, सर्वार्थ–सिद्धि दायक स्तोत्र, मनोवांछित कार्य सिद्धिसाधक स्तोत्र, पाप निवारक स्तोत्र, पुण्य का प्रसारक करने वाला स्तोत्र, चैतन्य चमत्कारी स्तोत्र, बुद्धि और विशुद्धि वर्द्धक स्तोत्र यह भक्तामर स्तोत्र है। एक–एक काव्य पढ़ते समय, हम आपको बतायेंगे कि कौन–सा काव्य किस कार्य में काम आयेगा? जैसे– विद्या छठवें काव्य के पढ़ते से बढ़ती है। किस काव्य के पढ़ने से नेत्र का रोग दूर होता है? किस काव्य के पढ़ने से बुखार दूर होता है? किस काव्य के पढ़ने से बीमारियाँ दूर होती है? किस काव्य के पढ़ने से क्या लाभ होता है? इत्यादि।

प्रिय आत्मन्!

यह भी समझ में न आये, तो इतना समझ लो, एक पुरुष के हाथ में मणि दे दी और वह कांच समझ रहा है। एक पुरुष के हाथ में काँच दिया है, वह मणि समझ रहा है। बताइये! लाभ में कौन है? जिसके हाथ में मणि है। भले ही वह काँच समझे लेकिन मणि तो अपना प्रभाव दिखायेगी ही। इसी तरह तुम भक्तामर की आराधना करो भले ही तुम्हें अर्थ समझ में आये न आये, इसका अर्थ मालूम हो अथवा न हो लेकिन भक्तामर स्तोत्र अपना प्रभाव छोड़ेगा। जो जिसका कार्य है वह प्रभाव छोड़ेगा। जैसे– आप दवाई लेते हैं। दवा आपने ले ली वह अपना प्रभाव करेगी, तुम्हें पता नहीं दवाई का नाम क्या है? लेकिन वैद्य ने दवाई दी आप ले लेते हैं और दवाई अपना प्रभाव शुरु कर देती है।

उसी तरह से गुरु ने हमें बताया है– किस स्थिति में भक्तामर का पाठ करना है? मैंने पाठ करना शुरु कर दिया, मुझे भक्तामर का अर्थ भी मालूम नहीं है फिर भी भक्तामर स्तोत्र में जो शक्तियाँ हैं,

उनका प्रभाव तो पड़ेगा ही। जैसे–दवाई की गोली में बहुत सारी शक्तियाँ होती है, वे तन के रोग को मिटाती हैं। उसी तरह एक–एक काव्य में इतनी शक्तियाँ है, एक–एक अक्षरों में इतनी शक्तियाँ हैं, कि वे शक्तिवान अक्षर, शक्तिवान स्वर, शक्तिवान व्यंजन मन के रोग को मिटाते हैं और अशांत वातावरण को शांत कर देते हैं, मन को प्रसन्न कर देते हैं। इसलिये भक्तामर स्तोत्र, परम स्तोत्र है, उत्कृष्ट स्तोत्र है। यह स्तोत्र पूज्यतम, पावनतम स्तोत्र है। इस स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मानतुंगदेव हैं। इस स्तोत्र में अड़तालीस छंद हैं। स्तोत्र की रचना संस्कृत भाषा के बसंततिलका छंद में है। स्तोत्र की विधा निराली है। इसलिये निराली है क्योंकि पहले काव्य में, पहले पंक्ति में जितने अक्षर मिलेंगे उतने ही अक्षर दूसरी पंक्ति से लेकर अड़तालीस काव्य की अंतिम पंक्ति तक उतने–उतने ही अक्षर मिलेंगे। पहली पंक्ति में जितनी मात्रायें मिलेंगी, उतनी ही मात्रायें दूसरी पंक्ति से लेकर अड़तालीसवें काव्य की अंतिम पंक्ति तक मिलेंगी।

यह कितना महान स्तोत्र है? किस पद्धति से उन्होंने संजोया है? आप अपनी दुकान का माल कितनी सुन्दर पद्धति से जमाते हैं? वीणा के एक–एक स्वर को कितने तरीके से जमाया जा सकता है? वीणा के साज पर एक–एक स्वर को जैसे जमाया जाता है। आप अपने व्यापार में एक–एक सामान को जोड़ते हैं। गृहिणी गृह कार्य को जोड़ती है, कवि अपनी कविता का श्रृंगार करता है और संजोता है। तानसेन का स्वर बुझे हुये दीपक को जला देता है। तो आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं कि मेरे स्वर ईश्वर को जगा देते हैं, मेरे स्वर ज्ञान का दीपक जला देते हैं, मेरे स्वर श्रद्धा का दीपक जला देते हैं। तानसेन के विषय में तो इतना ही सुना है कि जब तानसेन गाने बैठता था तब बुझे हुये दीपक जल उठते थे। लेकिन मैंने आचार्य मानतुंग स्वामी के विषय में सुन रखा है कि जब वह भक्तामर को गाने बैठे हैं तो लोहे के ताले भी टूट गये थे।

मैंने तानसेन के विषय में इतना ही सुना है कि जब तानसेन अपनी स्वरलहरियों को छोड़ता था, आकाश से जल की धारायें फूट पड़ती थी। लेकिन मैंने समंतभद्र के विषय में सुना हैं जब समंतभद्र स्वामी स्वयंभू स्तोत्र गा रहे थे तो उस समय पाषाण पिण्ड फट गया और उसमें से चन्द्रप्रभ भगवान प्रकट हो गये। मैंने सुना है, कुमुदचन्द्र आचार्य ने जब आराधना की तो पारसनाथ प्रकट हो गये। मैंने सुना है, स्वर अनेक बीमारियों को दूर करता है, संगीत अनेक बीमारियों को दूर करता है लेकिन इससे भी महान बात यह है कि एकीभाव के निर्माता आचार्य वादिराज स्वामी जब भक्ति में लीन होकर के एकीभाव स्तोत्र को गाते हैं, तो उनकी कुष्ठ रोगी काया कंचन काया के रूप में

परिवर्तित हो जाती है। पलभर में कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। मैंने सुना है संगीत के प्रभाव से रोग दूर हो जाते हैं, पर मैंने यह भी सुना है कि इस धरती के महाकवि धनंजय जब भक्ति करते हैं और भक्ति करने के बाद, भक्ति से पवित्र गंधोदक जब अपने बेटे पर छिड़क देते हैं तो उसका विष दूर हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

विचार करो !! आचार्य मानतुंग ने संकट में समयसार हाथ नहीं लिया। कुमुदचंद्र स्वामी ने संकट के समय समयसार हाथ में नहीं लिया। वादिराज स्वामी ने संकट के समय समयसार हाथ में नहीं लिया। आचार्य मानतुंग स्वामी ने भक्ति का सहारा लिया। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने स्तोत्र का सहारा लिया। कुमुदचंद्र ने भक्ति का सहारा लिया। धनंजय ने भक्ति का सहारा लिया। वादिराज स्वामी ने भक्ति का सहारा लिया। हम आपसे भी कहेंगे जब हमारे आचार्यों ने स्तोत्र के सहारे को लेकर के इतनी बड़ी विपदा को पार कर लिया है। तो फिर हम स्तोत्र का सहारा लेकर के आत्मा को भवसागर पार करेंगे। मुक्ति सम्पदा को प्राप्त करेंगे। उस अनंत चतुष्टय रूपी संपदा को देने वाला स्तोत्र है। इस महामंगल कामना के साथ हम प्रवेश करते हैं– भक्तामर स्तोत्र में।

प्रिय आत्मन् !

आपके घर में जो दीपक जलता है तो वह घर के अंधकार को दूर करता है। वही दीपक जब मंदिर में जलता है और भगवान के चरणों तक उसकी कांति जाती है तो उस कांति में जो पहुँचता है उस दीपक की कांति का ऐसा प्रभाव होता है कि वह पाप अंधकार को दूर करने लगता है। आचार्य मानतुंग स्वामी कह रहे हैं– बाहर में जो भी हो रहा है वह सब पाप के अंधकार में हो रहा है, पुण्य के प्रकाश की आवश्यकता है। क्योंकि जितनी अनैतिक प्रवृत्तियाँ घटती है वे सब पाप के अंधकार में घटती है। जब प्रकाश हो जाता है तो प्रवृत्तियाँ नहीं घटती है। तब आचार्य मानतुंग स्वामी लिख रहे हैं कि मुझे जेल में डाल दिया, यह इसके पाप की दशा है। यह इसके अज्ञान की दशा है, मुझे तो पाप रूपी अंधकार को दूर करना है।

उदाहरण– एक नाव में बहुत सारे बच्चे जा रहे थे और वे बच्चे उधम करने लगे। नाव में एक सन्यासी बैठा था। सन्यासी बोला– नाविक! कहो तो, मैं अभी नाव को पलटा दूँ और सभी बच्चे नदी में डूब जायेंगे। नाविक बोला– नाव को मत पलटो, इनकी बुद्धि को पलट दो।

आचार्य श्री मानतुंग स्वामी कहते हैं– हमें लोहे के ताले नहीं तोड़ना है हमें तो कर्मों के ताले तोड़ना है, पापों के ताले तोड़ना है। कर्मों के ताले तोड़ने के लिये स्तोत्र रचेंगे, स्तुतियाँ रचेंगे, स्तुति के रचने से कर्मों के ताले टूट जायेंगे।

हम हर घर में ट्यूबलाइट जलाते हैं, बल्ब जलाते हैं, मरकरी जलाते हैं, ये विद्युत दीप अंधकार को दूर करते हैं। लेकिन वही कांति जब भगवान के चरणों पर पड़ती है तो पाप रूपी अंधकार को नष्ट कर देती है। जब हम भगवान के चरणों में पहुँचें तो हमारी दृष्टि कहाँ होना चाहिये?

तं गोम्मटेशं पणमामि णिच्चं।।

गोम्मटेश अष्टक पढ़ने में आठ बार चरणों में दृष्टि, शांति भक्ति के आठों पद में चरणों में दृष्टि ले गये।

आचार्य यह कह रहे हैं– भगवन्! मैं कहाँ पड़ा हूँ? और मैं देख रहा हूँ। तुम्हारे चरणों में पड़ा हूँ। रहस्य की ओर जाओ। मुझे यह नहीं देखना है कि इसमें क्या लिखा? मुझे वहाँ तक पहुँचना है कि मानतुंग स्वामी उस समय क्या अनुभूति कर रहे होंगे? जिस समय लिख रहे होंगे उस समय उनकी चिंतना क्या चल रही होगी? कौन–सी चिंतन धारा चल रही होगी? जब आपकी पद कांति उनके पापों को दल सकती है, जो देव आपके चरणों में माथा झुकाते हैं। जो आपके चरणों में माथा नहीं झुकाते हैं उनके पाप नहीं दलते हैं।

विशेषता मुकुटों की नहीं है विशेषता आपके चरणों की है। मुकुट तो व्यवहार में है, विशेषता तो झुके हुये भावों की है। जिस आत्मा के भाव जिनेन्द्र भगवान के चरणों में झुक गये हैं, उसके लिये सम्यक् दर्शन की कांति प्राप्त होती है। सम्यक्ज्ञान की कांति प्राप्त होती है। सम्यक् चारित्र की कांति प्राप्त होती है। ये कांति मोह और अज्ञान के अंधकार को दूर करती है।

प्रिय आत्मन्!

व्यवहारिक अर्थ इसका अलग है आध्यात्मिक अर्थ अलग है। पाप रूपी अंधकार जो अंतस चेतना में छाया है। वह पाप रूपी अंधकार भी नमस्कार की भावना से जो श्रद्धा की कांति प्रकट होती है उससे नष्ट हो जाता है। इसलिये अनादिकाल से संसार समुद्र में डूबते हुये, मिथ्यात्व में डूबते हुये, इस आत्मा को एक मात्र आपका नमस्कार ही अवलम्बन है। अतः आपको बारम्बार नमस्कार हो।

*****

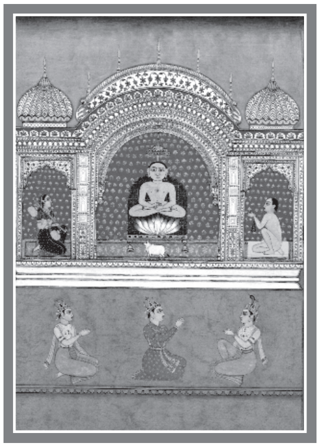

स्तुति का संकल्प

यः संस्तुतः सकल–वाङ्मय तत्त्व–बोधा–
दुद्भूत–बुद्धि–पटुभिः सुरलोक–नाथैः।
स्तोत्रै – र्जगत्त्रितय – चित्त – हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।2।।

अन्वयार्थ :

यः	– जो	सकल	– समस्त
वाङ्मय	– शास्त्र के	तत्त्व–बोधात्	– तत्वों के ज्ञान से
उद्भूत	– उत्पन्न	बुद्धि पटुभिः	– बुद्धि की कुशलता वाले
सुरलोक नाथैः	– देव लोक के स्वामी इन्द्रों द्वारा		
त्रितय	– तीन जगत के	चित्तहरैः	– मन को हरण करने वाले
उदारैः	– महान	स्तोत्रैः	– स्तोत्रों से
संस्तुतः	– अच्छी तरह स्तुति किये गये ऐसे		
तम्	– उन	प्रथमं	– प्रथम आदिनाथ
जिनेन्द्रम्	– जिनेन्द्र को	किल	– निश्चय से
अहम्	– मैं	अपि	– भी
स्तोष्ये	– स्तुति करूँगा।		

भावार्थ :

समग्र द्वादशांग के तत्त्व ज्ञान से जिनकी बुद्धि उत्पन्न हुई है, ऐसे देवों द्वारा तीन लोक के जीवों को आनंदित करने वाले स्तोत्रों के द्वारा जो स्तुति किए गये हैं उन प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान की मैं स्तुति करूँगा।

सर्व विघ्न विनाशक

भावानुवाद

सकल शास्त्र के तत्त्व बोध से, जिनकी मति जागी।
ऐसे इन्द्रों की निर्मल मति, संस्तुति में लागी।।
भुवनत्रय आनंद प्रदायी, संस्तुतियों द्वारा।
उन आदीश्वर को मैं भजता, बहा भक्ति धारा ।।2।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः ।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं नानामरसंस्तुताय सकलरोगहराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

स्तुति संकल्प

यः संस्तुतः सकलवाङ्मय तत्त्वबोधा
दुद्भूत–बुद्धि पटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रै जंगतत्रितय–चित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।2।।

भावार्थ– सम्पूर्ण वाङ्मय का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यन्त प्रखर हो गई है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीनों लोकों के प्राणियों के चित्त को आनंदित करने वाले सुंदर स्तोत्रों के द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। उन प्रथम जिनेन्द्र की मैं भी स्तुति करता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

भगवान आदिनाथ स्वामी के लिये मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके चरण संसार समुद्र में डूबते हुये प्राणियों के लिये, जहाज के समान सहारा देने वाले हैं, ऐसे आदिनाथ स्वामी के चरणों का मैं मनसा, वाचा, कर्मणा अवलम्बन लेता हूँ। हे प्रभु! मैंने आपके भरोसे जीवन नैया डाली है। यह संसार समुद्र है। हम सब प्राणी इस संसार समुद्र में डूब न जाये इसलिये आपके चरणों का अवलम्बन ही जहाज के समान है। जैसे– कोई व्यक्ति समुद्र में गिर जाये, तट से फिसल जाये और उसे अचानक कोई नौका मिल जाये तो वह डूबने से बच जाता है। वैसे ही हे प्रभु! आप मुझे नरक में डूबने से बचाने वाले हो, तिर्यन्च गति से बचाने वाले हो, विषयों, राग, कषायों से बचाने वाले हो। संसार समुद्र क्या है? मोह परिणाम, रागी होना, द्वेषी होना, कषाय सहित होना ही तो संसार समुद्र है। संसार बाहर में नहीं है। मेरी आत्मा के प्रदेशों के अन्दर ही मेरा संसार है। संसार में डुबाने वाला कोई दूसरा नहीं है। जब मेरा उपादान विकृत होता है तो मैं ही मेरी आत्मा को पापों से, कषायों से, द्वेष से डुबा लेता हूँ। राग में डूबना ही तो संसार में डूबना है।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज।। 158

बन्ध का नाम संसार है। राग करने से संसार बन्ध होता है। वैराग करने से बन्ध दूर होता है। जो राग में डूब गया संसार में डूब गया। जो वैरागी हो गया वह मोक्ष की ओर चला गया। संसार का क्या

अर्थ है? संसार का मतलब किसी क्षेत्र से नहीं है, संसार बाहर नहीं है। मानतुंग आचार्य अपनी आत्मा के बाहर संसार देखते ही नहीं, उन्हें दिख रहा है– **भवजले पततां जनानाम्।** भव की चार प्रकृति हैं– नरक, तिर्यन्च, देव, मनुष्य। भवों का जल जिसमें भरा है, इस संसार रूपी समुद्र में संसार। समुद्र कहाँ है? विभाव भाव में जब–जब मेरी आत्मा में मोह भाव जागता है, मैं अपने शुद्ध स्वभाव से दूर रहता हूँ। तब–तब मैं विभाव में डूब जाता हूँ। **स्वभाव ही पार लगाता है।** नदी में डूबते व्यक्ति को तो कोई भी बचाकर पार लगा देगा, पर इस संसार समुद्र में डूबे हुए को कौन पार लगायेगा? अपना चिन्तन ही हमें डुबाता है और वही पार लगाता है। निरन्तर तृष्णा, लोभ, लालच हमें डुबो रहे हैं, हम डूबते जा रहे हैं, गिर रहे हैं, तृष्णा के समुद्र में। आचार्य कहते हैं– हे प्रभु! आपके चरणों में जो आयेगा वह लोभ तृष्णा से हट जायेगा क्योंकि जिसका मन आपके गुण स्मरण में चला गया, वह पापों की दलदल में नहीं जायेगा।

निमित्त के माध्यम से हम तैरते भी हैं और डूबते भी हैं। निमित्त कोई भी बन सकता है, जब तक मैं अपने उपादान को न बिगाड़ूँ, तब तक मुझे डुबाने वाला कोई नहीं है। अनादि काल से हम डूबते आ रहे हैं। आज हमने जाना है कि आपके चरण जहाज के समान हैं। अब मुझे सहारा दे दो मुझे डूबने से बचा लो।

मैंने तेरे ही भरोसे आदिनाथ! भँवर में नैया डाल दी। आचार्य कहते हैं– तुमने भगवान के भरोसे नैया डाल दी होती तो संसार समुद्र में नैया न होती। मोक्षमार्ग की ओर चल देती। कभी–कभी जब डूबने वाला डूबता है तो आवाज लगाता है– मुझे बचाओ, मुझे बचाओ और उसे शायद कोई बचा भी लेता है। पर इस संसार समुद्र में मैं डूब रहा हूँ और मुझे बचाने वाला कोई नहीं है। हे प्रभु! मैंने आपके चरणों को पकड़ लिया है। बाहरी नौका मुझे गंगा में डूबने से बचा सकती है, पर तिर्यन्च गति से नहीं, नरक गति से नहीं। हे प्रभु! आप मुझे नरक में डूबने से बचा लेते हैं। क्योंकि जब आपका स्मरण होता है तो मैं मायाचारी में डूबने से बच जाता हूँ।

जब मैं आपके चरणों में आता हूँ, आपका अभिषेक करता हूँ, आपकी पूजा करता हूँ तो मैं लोभ से बच जाता हूँ। जितने समय तक लोभ से बचता हूँ उतने समय तक नरक में डूबने से बच जाता हूँ। भाव पवित्र होना चाहिये। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं– प्रभु के चरणों से क्या तात्पर्य है? चरणों से तात्पर्य है-प्रभु के आचरण से। हे प्रभु! आपका जो दिया गया आचरण पथ है, आपके

द्वारा दर्शाया गया जो मुक्ति पथ है वह मेरा अवलम्बन है। चरणों को तो तुम रोज ही छूते रहना पर जब तक आचरण को नहीं छुओगे तब तक संसार सागर से नहीं निकल पाओगे। जिनेन्द्र भगवान के पाद क्या हैं? जो शरीर से ही निस्पृही हो, जिन्होंने शरीर का ही त्याग कर दिया हो, उसके क्या पाद होंगे? श्लोक के चरण को पाद कहते हैं। गाथा के चरण को, आठ अक्षरों के समुदाय को पाद कहते हैं। जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि ही पाद है। जिनवाणी के वचन जिनपाद हैं। जितनी गहराई में डूबे हो उतना ही जिनपाद का अवलम्बन लेना होगा। आगम में जो पाँच महाव्रत का उपदेश दिया है, उन्होंने पंच आचरण का उपदेश दिया है। चरण दो प्रकार के होते हैं– सकल चरण और विकल चरण।

सकलं विकंल चरणम्।। (र.क.श्रा.)

भक्ति की धारा में बहना, पर अंधे होकर नहीं, भगवान के भरोसे रहकर नहीं। भगवान कहते हैं– जो मेरे भरोसे रहता है, मैं उन पर भरोसा नहीं करता। जो मेरे बताये आचरण पर चलता है, मैं उस पर भरोसा करता हूँ। राम भरोसे रहने वाले पर राम भी भरोसा नहीं करते हैं।

जिनपादयुगम् दो चरण बताये हैं। तुम्हें कौन डूबने से बचायेगा? **आचरण** डूबने से बचायेगा। प्रिय आत्मन्! तुम सोने के चरण बना लो और जाकर, नदी में डुबकी लगा लेना तो क्या वे सोने के चरण तुम्हें बचा लेंगे? न। न तो यहाँ चरणों की चर्चा हैं, ना समुद्र की। चर्चा तो यहाँ पर भीतर के विभाव रूपी समुद्र की है, कषायों के समुद्र की है, और बचाने वाले चरण आचरण हैं। वह आचरण, सदाचरण सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र ही मुझे डूबने से बचायेगा। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का आचरण ही हमें बचायेगा।

एक चाण्डाल था। उसका एक नियम था कि अष्टमी के दिन वह किसी को फाँसी नहीं चढ़ायेगा। पर राजा की आज्ञा हुई कि अष्टमी के दिन ही राजपुत्र को फाँसी पर चढ़ाना है। वह चाण्डाल बोला–नहीं। राजा ने कहा कि कोई चाण्डाल के भी नियम होते हैं। इसे समुद्र में फिंकवा दिया जाये, पर नियम के बल पर समुद्र में उसकी रक्षा देवताओं ने की। **चाण्डाल समुद्र में सिंहासन पर बैठा था। देवता पूज रहे हैं। समुद्र में डूबते हुये प्राणी को किसने बचाया?** हे आत्मन्! भगवान किसी को बचाने नहीं आयेगा और ना ही डुबाने आयेंगे। ना वे सुख देते हैं, ना ही दुःख। वे कर्ता–धर्ता नहीं हैं। वे तो वीतरागी हैं, उनका मार्ग वीतरागता का मार्ग है।

हे प्रभु! तुम्हारे चरण मुझे भव–सागर से बचा लेंगे। वास्तविक अर्थ क्या है? भगवान जिनेन्द्र ने दो चरण दिये हैं। सकल चरण और विकल चरण। दो ही चारित्र हैं। जो डूबने से बचाते हैं। हे आत्मन्! जितने समय तक आप प्रवचन सुनते हैं उतने ही समय तक आप संसार समुद्र में डूबने से बच रहे हैं। संकल्प नहीं होता है तो सिद्धि नहीं होती है। किसी भी कार्य की सिद्धि के पूर्व महापुरुष संकल्प प्रदर्शित करते हैं। अपना निर्णय, निर्देश प्रस्तुत या प्रदर्शित करते हैं। जीवन में कार्य की सिद्धि के लिये संकल्प होना जरूरी है। वादा करने की क्या आवश्यकता है? आचार्य मानतुंग स्वामी ये संकल्प लेते हैं कि मैं भक्तामर रचूँगा। प्रभु! संकल्प विशुद्धि का मार्ग है। संकल्प में अहम्, राग, द्वेष, नहीं होना चाहिये। **अनुष्ठान के प्रति पूर्ण समर्पण का नाम संकल्प है।** कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ ली गयी प्रतिज्ञा, पूर्ण लगन का नाम संकल्प है। व्रत धारण का नाम संकल्प है। एक छोटा–सा नियम भी बड़ी से बड़ी उपलब्धि करा देता है। बेटी मनोवती ने एक नियम लिया कि देवदर्शन बिन भोजन नहीं करूँगी, और दर्शन भी खाली हाथ नहीं, गजमोती चढ़ाकर करूँगी। जिसके पास भीतर के मोती है, उसे बाहर की क्या आवश्यकता? पिता के खजाने में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी। हे आत्मन्! भगवान के दर्शन में खाली हाथ व खाली भाव नहीं होना चाहिये। बाहर में द्रव्य, भीतर में भाव होना चाहिये। भगवान के चरणों में खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।

मंगल कलश भरकर रखते हैं। हाथ हम भर कर रखते हैं। यदि मेरा मन कलश है, भीतर का मेरा भाव ही मंगल जल है। बेटी मनोवती बोली– पिताजी मैं देवदर्शन करके ही भोजन करूँगी। पिताजी प्रसन्न हो गये। बेटी, हमारे यहाँ गज मोतियों का खजाना है। तुम्हारी शादी भी मैं वहीं करूँगा जहाँ मोती ही मोती होंगे। प्रिय आत्मन! हर पिता चाहता है कि मेरी बेटी का घर, मेरे घर से अच्छा हो। मेरी बेटी का वर मुझसे भी अच्छा हो। पिताजी ने घर चुना, वर चुना, धन चुना। बेटी की शादी हुई। ससुराल पहुँच गयी। पर वह किसी से नहीं कह पाई कि मैं देवदर्शन के बिना भोजन नहीं करूँगी। सास बोली– बेटी भोजन कर लो। फिर ससुर जी ने पूछा कि तुमने भोजन नहीं किया, कहो! क्या बात है? उसने पिताजी को बता दिया कि मैं देवदर्शन करके ही भोजन करूँगी। ससुरजी बोले– इतनी–सी बात। पिताजी ने दर्शन करा दिये फिर भी भोजन नहीं किया। फिर पिताजी बोले कि तुमने भोजन क्यों नहीं किया? बेटी मनोवती बोली– पिताजी मेरा नियम है कि गजमोती चढ़ाकर के ही भोजन करूँगी। पिताजी बोले

तो फिक्र की कोई बात ही नहीं है, अपने यहाँ तो मोतियों के भण्डार हैं। ले जाओ। जिन चैत्यालय का प्रथम दिन था। उसने दर्शन कर मोती चढ़ाये, फिर भोजन किया। जब माली ने द्रव्य सामग्री उठायी तो उसे एक मोती मिला। माली ने सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि राजा मेरी परीक्षा ले रहा हो, तो माली ने वह मोती राजा को जाकर दे दिया। राजा ने वह मोती रानी को दिया। रानी को वह मोती बहुत अच्छा लगा। उसने कहा कि स्वामी! क्या ऐसे मोती और मिलेंगे? मैं उसका हार बनाऊँगी। राजा ने माली से पूछा कि ये मोती कौन चढ़ाता है? तो माली बोला यहाँ सेठजी की एक नयी बहू आयी है, वह ही मोती चढ़ाती है। जब ये बात सेठ के कानों में पहुँची तो उनको लगा कि कहीं राजा मेरा धन न छीन लें। उसने बुद्धसेन व मनोवती को घर से निकाल दिया और सोचा यदि राजा ने पूछा तो कह दूँगा कि वह अपने पिता के घर से लायी होगी। ज्योंहि वे पति–पत्नी घर से निकलें। ससुरजी का सारा धन सारे मोती कोयला हो गये। किसी– किसी का पुण्य इतना बलवान् होता है कि जब तक वे घर में थे तो मोती, मोती थे, पर ज्योंही वे निकलें तो मोती कोयला बन गये।

बेटी मनोवती जंगल में थी अपने पति के साथ। आठ दिन तक भोजन नहीं किया। क्योंकि वहाँ जिनालय नहीं था। ज्ञानियो! क्या हमारे पास भी ऐसा संकल्प है कि भगवान का दर्शन प्रतिदिन करेंगे? उसकी उम्र बीस वर्ष थी। नव विवाहिता जंगल चली गयी। धन्य है! वह बेटी। वह बोली– मैं वन में रह लूँगी, पर प्रतिज्ञा नहीं तोड़ूँगी। **संकल्प कमजोर हो तो सिद्धि नहीं होती। यदि साधना में शक्ति होगी तो नियम से वह सिद्ध होगी। हम सिद्धि चाहते हैं, पर साधना से डरते हैं।** मनोवती ने आठ दिन तक भोजन नहीं किया तो सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हो गया। मध्यलोक में एक श्राविका अपने धर्म का पालन कर रही है। अगर इसके प्राण निकल गये तो लोग क्या कहेंगे? कि जैनधर्म किसी के प्राण ले लेता है। सौधर्म इन्द्र ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी और जंगल में मनोहर जिनमंदिर का निर्माण हो गया। प्रिय आत्मन्! तुम्हें मंदिर बनाने की आवश्यकता नहीं है, तुम तो केवल मंदिर निर्माण के भाव बनाओ तुम्हारे पुण्य से तुम्हें बने बनाये मंदिर मिलेंगे। मंदिर जाने के भाव बनाओ तुम अपना कर्त्तव्य करो। यदि तुम भी ऐसा नियम बनाते हो तो तुम्हारा अगला जन्म वहीं होगा। जहाँ तुम्हें दर्शन और प्रवचन मिलेंगे, संतों की देशना मिलेगी। हम पुण्यों को घटायेंगे नहीं, बढ़ायेंगे। हम बासी रोटी नहीं, ताजी रोटी खायेंगे। हम रोटी खा रहे हैं, तो पूर्व पुण्य की खा रहे हैं। वर्तमान में यदि तुम धर्म कर रहे हो तो ताजी रोटी खानी चाहिये। प्रिय आत्मन्! तुम

बस अपने परिणाम देखो! यदि मेरे धर्म के परिणाम हैं तो मैं ताजा भोजन कर रहा हूँ। तुम्हारा नियम तुम्हें स्वर्ग में भी मंदिर दिलवा देगा।

मुनि महाराज जी का नियम है कि वे सोले का आहार करेंगे। श्रावक द्वारा पड़गाहन करके ही विधिपूर्वक आहार करेंगे। तो ये उनका पुण्य ही तो है कि उन्हें भोजन मिल रहा है। कौन साधु भूखा है? **मैं यदि नियम निभाना जानता हूँ तो नियम भी मुझे निभाना जानता है।**

अभी भी मनोवती ने भोजन नहीं किया। फिर सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हो गया। फिर उन्होंने जंगल के बीच मोती के थाल रखें। मनोवती ने मोती चढ़ाये दर्शन किये और उसे वृक्ष मिला, फल–फूल मिले और भोजन किया। यही व्रत है। नियम की महत्ता है। धन्य है अनन्तमती! उन्होंने आठ दिन का संकल्प लिया तो भविष्य की आर्यिका अनंतमती माताजी बनी। अकलंक मुनिराज आठ दिन का ब्रह्मचर्य का नियम लेते हैं तो भविष्य के अकलंक आचार्य बन जाते हैं। यही संकल्प की महिमा है। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं मैं संकल्प के साथ जीऊँगा। बिना संकल्प के कुछ नहीं होता। बिना पंजीयन के विद्यालय के बाहर पढ़ना, ठीक वैसा ही है जैसा बिना संकल्प के जीवन। तुम स्कूल के विद्यार्थी नहीं कहलाओगे। **उत्तीर्णता के लिये प्रवेश आवश्यक है।**

आप कहते हैं कि मेरे बेटे को बुद्धि नहीं है। बुद्धि कैसे उत्पन्न होती है? **तत्त्व के बोध से बुद्धि उत्पन्न होती है।** जब हम आम के पेड़ के नीचे जाते हैं तो क्या सारे फल तोड़ पाते हैं, नहीं ना। केवल पके फल से ही हमारी भूख मिट जाती है। उसी तरह स्तोत्र का कार्य भी शब्द सही ढंग से पढ़ लो तो पढ़ना सार्थक हो जाता है।

बुद्धि की जननी कौन है? तत्त्व के ज्ञान से बुद्धि आती है। दो प्रकार की बुद्धि होती है– दया बुद्धि और निर्दया बुद्धि। जो शांति प्रदान करती है वह दया बुद्धि कहलाती है। अर्थोपार्जनी विद्या जो अर्थ के उपार्जन में काम आती है उसे निर्दया बुद्धि कहते हैं। शास्त्रसार समुच्चय में कहा है– **मात्र व्यापार में पायी जाने वाली बुद्धि जीवों का घात करती है।**

तत्त्व ज्ञान से बुद्धि निकाली जाती है जैसे–दूध से घी निकलता है। जब तत्त्व का ज्ञान नहीं है तो बुद्धि कहाँ से आयेगी? हम कहते हैं कि बुद्धि बढ़े। दूध बढ़े तो ज्यादा घी आयेगा। क्षुल्लक ध्यानसागरजी कहते हैं कि आपकी बुद्धि पुण्यकारी तभी बन सकती है जब पुण्यबुद्धि हो। अन्यथा पाप बुद्धि खोटे कार्य में चली जायेगी। अपनी सन्तान को धन की कला सिखाने से पहले धर्म की कला सिखाओ,

ताकि वे धर्म से धन को सही कार्य में लगा सके। तत्त्व का ज्ञान बुद्धि को जन्म देता है। जैसे– वृक्ष से फल गिरता है, हिमालय से गंगा निकलती है, वृक्ष से फल उत्पन्न होता है वैसे ही तत्त्व बोध से बुद्धि उत्पन्न होती है। शास्त्रों के अध्ययन से, जिनवाणी के अध्ययन से तत्त्वबोध आता है । करोड़ों रुपये गिन लेना आसान है, परंतु जिनवाणी के चार पेज पढ़ना कठिन है। इसके लिये भी पुण्य चाहिये। प्रिय आत्मन्! यह बताओ! व्यक्ति करोड़ों रुपये गिन रहा है वह महान् है या जिनवाणी के चार पेज पढ़ने वाला? **जिनवाणी पढ़ने वाला महान है। तत्त्व का ज्ञान न होने पर तुम मिसाइल तो बना लोगे पर समता नहीं।**

राष्ट्रपति अब्दुल कलाम श्रवणबेलगोला आये थे तो वे बोले– महाराजश्री! हमें ऐसा मिसाइल चाहिये जो विश्व में शांति कायम कर सकें। अहिंसा की मिसाइल चाहिये। महावीर की अहिंसा मिसाइल ही चाहिये। तत्त्वबोध का जितना प्रयास करेंगे उतनी ही बुद्धि आयेगी। सर्वार्थसिद्धि के देव चर्चा करते हैं , तत्त्व चर्चा में तैंतीस सागर बिता लेते हैं। ऐसा महान् स्तोत्र जो तीन लोक के चित्त को हरने वाला है, स्तोत्र को पढ़ो तो ऐसा पढ़ो कि सभी व्यक्तियों के मन आकर्षित कर लें। जैसे– चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेती है। अनगार धर्मामृत में लिखा है कि जब मुनिराज वन में स्तोत्र का पाठ करते हैं तो मयूर नाचने लगते हैं। सौधर्म इन्द्र जब सहस्रनाम का पाठ करता है तो समवशरण में हर कोई आनंद विभोर होकर देखता रह जाता है।

भक्ति से शक्ति घटती नहीं, बढ़ती है। भक्ति ही आत्मा को शक्ति देगी। समवशरण में तीन लोक के जीव बैठे रहते हैं। तो सौधर्मेन्द्र जब भक्ति करता है तो सभी देखते रह जाते हैं कि कौन भक्ति कर रहा है? जब वृक्ष पर कोयल कूकती है तो सभी देखते हैं कि वह कहाँ कूक रही है? रसगुल्ला जितनी देर मुँह में रहता है तो मीठा रस देता है, वैसे ही स्तोत्र का उच्चारण मन्द–मधुर स्वरों में करने से मंत्र का प्रभाव रहता है। अर्थात् सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने से जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर हो गयी है, ऐसे देवेन्द्रों ने तीनों लोकों के प्राणियों के चित्त को आनंदित करने वाले सुंदर स्तोत्रों के द्वारा प्रभु आदिनाथ की स्तुति की है। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं कि मैं उन प्रथम जिनेन्द्र की स्तुति करता हूँ।

*****

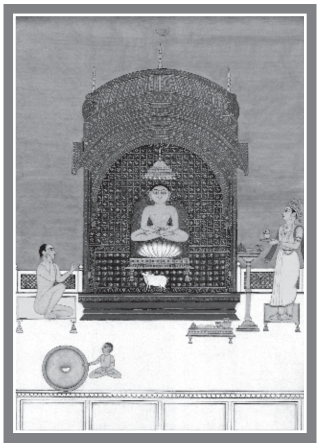

लघुता की अभिव्यक्ति

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पाद-पीठ!
स्तोतुं समुद्यत-मति-र्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

अन्वयार्थ :

विबुध	– देवों के द्वारा	अर्चित	– पूजित है
पादपीठ	– चरण रखने का आसन जिनका ऐसे जिनेन्द्र देव!,		
बुद्ध्या विनाऽपि	– बुद्धि के बिना भी		
विगतत्रपः	– लज्जा रहित	अहम्	– मैं
स्तोतुम्	– स्तुति करने के लिये	समुद्यतमति	– तैयार बुद्धि वाला
जल संस्थितम्	– पानी में स्थित	इन्दुबिम्बम्	– चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को
बालम्	– बालक को	विहाय	– छोड़कर
अन्यः कः	– अन्य कौन	जनः	– मनुष्य
सहसा	– बिना विचारे ही	ग्रहीतुम्	– पकड़ने के लिये
इच्छति	– इच्छा करता है।		

भावार्थ :

देवों द्वारा पूजित है आपका आसन ऐसे हे जिनेन्द्र देव! मैं बुद्धि के बिना भी और लज्जा रहित होकर आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ, मेरा यह कार्य उस अबोध बालक के समान है जो जल में झलक रहे चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा करता है।

सर्व सिद्धि दायक

भावानुवाद

देवों द्वारा पूजित आसन, ऐसे जिनवर की।
बुद्धिहीन तैयार हुआ मैं, संस्तुति को उनकी।।
जल में झलक रहे चंदा को, ज्यों बालक पकड़े।
लाज त्याज हम काज मान त्यों, संस्तुति को उमड़े ।।3।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा ।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं मत्यादिसुज्ञानप्रकाशनाय क्लीं महाबीजाक्षर–सहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

लघुता प्रकाशन

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित–पादपीठ,
स्तोतुं समुद्यत–मति–र्विगतत्रपोहम्।
बालं विहाय जलसंस्थित–मिन्दुबिम्ब–
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

भावार्थ– देवों द्वारा पूजित है जिनका सिंहासन, ऐसे हे जिनेन्द्रदेव! बुद्धिहीन होने पर भी मैं, जो आपकी स्तुति करने के लिये तत्पर हुआ हूँ, यह मेरी निर्लज्जता एवं धृष्टता ही है। भला, जल में दृश्यमान चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ने का साहस एक नादान अबोध बालक के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

प्रिय आत्मन!

भक्तामर स्तोत्र अमर हो गया। अमर स्तोत्र, अनुपम स्तोत्र, अकलंक स्तोत्र, चैतन्य–चमत्कारी स्तोत्र, भक्त को अमर करने वाला स्तोत्र, भक्त भक्तामर स्तोत्र की आराधना से अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। भक्तामर स्तोत्र पढ़ने से उसके प्रति श्रद्धा जागृत होती है, सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है, तदनुरूप आचरण करने से सम्यक् चरित्र हो जाता है।

भक्तामर स्तोत्र में भक्ति मार्ग है। भक्तामर स्तोत्र में चर्या मार्ग है। यह स्तोत्र मानतुंगाचार्य के आत्म–प्रदेशों में व्याप्त होने वाली आंतरिक आस्था का उद्भावन है, मानतुंग आचार्य की अंतर आत्मा के चैतन्य प्रदेशों में संचरण करने वाली, चैतन्य भावनाओं की अद्भुत सृजन शैली है। इस भक्तिशैली के शब्दशिल्प को पाकर धन्य हैं हम! अपनी चेतना में देखें, सम्यक् दर्शन के बिना सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र न तो उत्पन्न होते हैं , न ठहरते हैं, न बढ़ते हैं, न फलते हैं। जैसे बीज के अभाव में वृक्ष उगता भी नहीं, ठहरता भी नहीं, बढ़ता भी नहीं और फलता भी नहीं। उसी प्रकार सम्यक्त्व की उत्पत्ति में भक्तामर स्तोत्र अनुपम साधन है। स्तोत्र पर श्रद्धा करने से जीव सम्यक्दृष्टि बनता है। आचार्य कहते हैं– **मात्र श्रद्धा भी कार्यकारी नहीं है, श्रद्धा के साथ ज्ञान और चारित्र भी अनिवार्य है।** एक रोगी यदि वैद्य के ऊपर श्रद्धा नहीं करता है, तो उसके लिए औषधि लाभकारी नहीं हो सकती है परन्तु श्रद्धा तो है, लेकिन उस औषधि का समीचीन ज्ञान नहीं है कि कब उसको ग्रहण करना है? और कब ग्रहण

नहीं करना है? तो भी लाभकारी नहीं है। यदि ज्ञान भी हो गया और उस औषधि का सेवन नहीं किया, तो भी रोग समाप्त होने वाला नहीं है। उसी प्रकार से एक को भक्तामर पर श्रद्धा है किंतु पाठ नहीं करता, और एक को श्रद्धा नहीं, लेकिन वह प्रतिदिन पाठ करता है। इसलिए ऐसा करने से दोनों को लाभ नहीं होगा।

भक्तामर स्तोत्र के प्रति पूरी श्रद्धा के साथ उसका ज्ञान, अर्थ और भाव भी जानना आवश्यक होता है और आचरण में लाना भी आवश्यक होता है।

तत्त्व बोधात् बुदिः।

तत्त्व का ज्ञान या बोध ही बुद्धि कहलाती है।

विणयो मोक्ख दारं।

विनय मोक्ष का द्वार है। जब तक जीवन में लघुता नहीं आती है, तब तक प्रभुता का दर्शन नहीं हो सकता है।

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभुद्वार।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के सिर धूल।।

लघुता से प्रभुता मिलती है। जो प्रभुता में पड़ जाता है, प्रभु उनसे दूर हो जाते हैं। चींटी छोटी होती है, वह शक्कर का दाना मुख में दबाकर चलती है, लेकिन हाथी के सिर धूल पड़ती है। तात्पर्य यह है कि जहाँ लघुता होती है, वहाँ विनम्रता स्वयमेव होती है। **जहाँ नम्रता होती है, वहाँ कार्य की सिद्धि होती है।**

आचार्य मानतुंग स्वामी का नाम भले ही मानतुंग है लेकिन उनके अंदर कितनी विनय है? इस विनय को हम देखें इस भक्तामर स्तोत्र में। जिस प्रकार जल में स्थित चन्द्रमा को बालक पकड़ने दौड़ता है, वैसे ही मेरे निर्मल हृदय में आप अवतरित हो चुकें हैं। आप मेरे श्रद्धा के सरोवर में, आस्था के सरोवर में ऐसे अवतरित हो चुके हैं कि सिद्धालय से ही मानो उतरकर आ चुके हो। यह है– आस्था, श्रद्धा और भक्ति का विषय है।

यहाँ सिद्धान्त नहीं लगता। वस्तुतः परमात्मा सिद्धालय में रहता है, वह न कभी उतरा है, न कभी उतरेगा। तीन लोक में कहीं भी और कुछ भी होता रहे, लेकिन सिद्ध परमात्मा सिद्धालय से यहाँ

आने वाले नहीं हैं। फिर मेरे हृदय में कैसे आ गये? मेरे हृदय में मेरे ज्ञान से रचित, मेरी श्रद्धा से रचित मेरी भावनाओं के देवता मेरी आत्मा में उतर आते हैं। वह देवता तो ज्यों के त्यों रहते हैं।

जैसे कैमरे में व्यक्ति का चित्र उभर कर जाता है, वह व्यक्ति नहीं आता है, मात्र उसका चित्र आता है। उसी प्रकार से मेरे हृदय में वह परमात्मा भी उभर कर आ गया है। सत्य तो यह है, स्तुति पर की कहाँ है? स्तुति भी तो निज की है। इस अभेद की ओर जब आचार्य ले जाते हैं कर्तृत्ववाद पूरा हटा देते हैं। पहले कह रहे हैं, मैं स्तुति करूँगा। ओहो! मैं क्या स्तुति करूँगा? मैं क्यों कर्तृत्व धारण करूँ? मेरे पास तो बुद्धि ही नहीं है। यह मेरा झूठ कर्तृत्व क्या कर पायेगा?

जैन दर्शन में कर्तावाद है ही कहाँ? जैन दर्शन कहता है– कर्तृत्ववादी नहीं बनो, भोक्तृत्व वादी नहीं बनो, ज्ञातृत्ववादी बनो और आचार्य मानतुंग स्वामी ज्ञान चेतना के धारी हैं। ज्ञान चेतना के साथ चल रहे हैं।

चेतना तीन प्रकार की होती है। 1. कर्मफल चेतना 2. कर्म चेतना 3. ज्ञान चेतना।

कर्मफल चेतना वाला जो जीव होता है वह क्या कर सकता है? जो कर्म जैसा है, उसे भोगना ही है। उदय में है, उसे भोगना ही पड़ेगा, उसे निवारण नहीं कर सकता है। यह कर्मफल चेतना एक इंद्रिय जीवों के होती है। उदाहरण वृक्ष खड़ा है, गर्मी भोगना पड़ेगी, सर्दी भोगनी पड़ेगी, वर्षा में भीगना पड़ेगा।

दो इन्द्रिय जीवों से कर्म चेतना प्रारम्भ होती है, वह चाहे तो जैसे चींटी पानी से दूर हट जाती है, आग से दूर हट जाती है, अपनी रक्षा कर लेती है। कर्म चेतना कुछ करने की क्षमता है।

तीसरा ज्ञान चेतना वाला जीव मनुष्य है। वह चाहे तो तप करके, कर्मों से मुक्त भी हो सकता है। कर्म को कैसे भोगना है? यह जानने वाला ज्ञाता हो सकता है। कर्म आते रहेंगे, कर्म जाते रहेंगे, वह ज्ञाता–दृष्टा बुद्धि से देखता रहेगा। वह **देखो, जानो, जाने दो** की तटस्थ भावना रखता है। ज्ञातापना पर को जानना अलग है, निज को जानना अलग है। आचार्य उस ज्ञाता की ओर जा रहे हैं। दूसरे काव्य में जहाँ कर्तापन झलकता है, वह तीसरे काव्य में ज्ञाता आ जाता है। अहो! मैं किस स्तोत्र का कर्ता हूँ? मेरी क्षमता ही कहाँ है? यह तो मेरी अज्ञानता का सूचक है। मैं क्या कर पाऊँगा? मैं अपने योग और उपयोग को ही कर सकता हूँ। यह मकान किसने बनाया है? यह मकान तुमने नहीं बनाया, तुमने तो मात्र उपयोग बनाया है, योग बनाया है, तुम मकान के कर्ता और भोक्ता क्यों बनते हो? यह झूठा अहंकार कब तक लेकर चलोगे?

आचार्य मानतुंग स्वामी उस अहंकार को पनपने नहीं देना चाहते, जो अहंकार कभी आगे चलकर मुझे बाधक बन जाये। इसलिए मैंने पहले ही कह दिया है– मैं बुद्धि से रहित हूँ, क्योंकि मैं जो भी करूँ गा योग और उपयोग को करूँगा। मेरे भीतर इतनी ही क्षमता है। मैं अपना उपयोग लगा सकता हूँ, योग लगा सकता हूँ। लेकिन बाकी जो होना है, सो होगा। ईंट और सीमेन्ट के मिलने पर ही तो, ईंट से ईंट जुड़ी है। मैंने क्या जोड़ा? शिल्पी ने मकान बनाया। बेलदार (मजदूर) ने कुछ काम किया, शिल्पी ने कुछ काम किया, कुछ मजदूर ने काम किया, मालिक तू तो खड़ा–खड़ा देखता रहा, तूने क्या किया? बोलो! तुमने मकान बनाया। वह मजदूर कहता है– यह मकान मैंने बनाया। शिल्पी कहता है– यह मकान मैंने बनाया। जितने कारीगरों से पूछो– वह यही कहेंगे, यह मकान मैंने बनाया। मालिक कहता है– यह मकान मैंने बनाया। वस्तुतः उस मकान को बनाने वाले तुम नहीं हो, तुम तो मात्र अपने उपयोग और योग को बनाने वाले हो, यही अपनी परिणति है। करता कुछ भी नहीं हूँ, लेकिन फल भोग लेता हूँ।

हम कर नहीं पाते हैं, बाहर में भी नहीं कर पाते हैं। आपने नींव चार मंजिल की डाली, मकान दो मंजिल का बनाया। उपयोग में मास्टर प्लान सब आ गया। एक व्यक्ति मकान बना रहा है, एक व्यक्ति मास्टर प्लान बना रहा है, बताइये! दोनों में क्या अंतर है? जो मास्टर प्लान बना रहा है, वह अपना योग और उपयोग संचालित कर रहा है, उस उपयोग के कारण वास्तविक मकान तो उसी ने बनाया है, जिसने मास्टर प्लान बनाया है, हमारे अंदर योग और उपयोग चलता है।

आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं–यह आवश्यक नहीं है कि बुद्धि कितनी है? आवश्यक यह है कि उत्साह कितना है? **यदि उत्साह अधिक है, तो संख्या कम होने पर भी और ज्ञान कम होने पर भी कार्य हो जाता है। पर उत्साह नहीं है तो कार्य नहीं होता है।** कुश्ती बलवान नहीं जीतता, कुश्ती उत्साही बलवान जीतता है। परीक्षा में पास अकेला पढ़ने वाला नहीं होता है, परीक्षा में उत्साही भी पास होता है। अध्ययन पुस्तकों से नहीं होता है, अध्ययन गुरु से नहीं होता है, अध्ययन उत्साह से होता है। उत्साह के साथ विचार करने की क्षमता मेरे पास है, मैं उत्साह को नहीं घटाऊँगा, जब तक मेरा कार्य पूरा न हो जायेगा। मैं उत्साह नहीं घटाऊँगा, मैं उत्साह लेकर चलूँगा।

एक व्यक्ति था,उसके हाथ में एक लालटेन थी। रात्रि का अंधेरा था। व्यक्ति से पूछा–आप

कहाँ जा रहे हो? वह कहता है– मैं उस पहाड़ी की ओर जा रहा हूँ। आप पहाड़ी की ओर जा रहे हो? इस लालटेन का उजाला देख रहे हो? वह बोला– देख रहा हूँ। कितना है? क्या इस लालटेन के उजाले से तुमको पहाड़ी दिख रही है? बोला– नहीं दिख रही है। फिर क्या पहाड़ी पर पहुँच जाओगे? हाँ! अवश्य ही पहुँच जाऊँगा। लालटेन का उजाला तो चार कदम ही है, फिर आप कैसे पहुँचेंगे? वह बोला– लालटेन का उजाला मेरे कदमों से चार कदम आगे चलता है। मैं जब भी एक कदम आगे बढ़ाता हूँ, तो यह भी एक कदम आगे बढ़ जाता है। प्रकाश का कार्य सदा चार कदम आगे रहना है। प्रकाश तो उतना ही मिलेगा, हम जितना बढ़ते जायेंगे। प्रकाश उतना आगे होता चला जायेगा और हम अपनी मंजिल तक पहुँच जायेंगे।

एक व्यक्ति रास्ते में बैठा था। उससे एक राहगीर ने पूछा कि सामने वाला गाँव कितनी दूर है? वह कुछ नहीं बोला। उसने फिर पूछा– अगला गाँव कितनी दूर है? वह व्यक्ति फिर भी कुछ नहीं बोला। वह राहगीर कहता है– मैं कितनी देर से पूछ रहा हूँ, आप मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते हो? वह परेशान हो जाता है और फिर आगे बढ़ता है। जैसे ही वह दस कदम आगे बढ़ता है, तब वह व्यक्ति कहता है– आप एक घंटे में पहुँच जाओगे। वह राहगीर कहता है– कैसे? गांव की दूरी छः किलोमीटर है और आपकी चाल बता रही कि आप एक घंटे में पहुँच जायेंगे। वह राहगीर बोला– यदि बताना ही था तो पहले बोल देते? वह बोला– मैंने आपके कदमों की चाल नहीं देखी थी कि आपमें चलने का उत्साह कितना है? उड़ान पंखों से नहीं होती है, **उड़ान हौसलों से होती है। हौसला कितना है?आप उतना उड़ सकते हो। यदि पंखों से उड़ान होती, तो कोई भी व्यक्ति पंख बाँध लेता।**

उत्साह शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है, पराजित होती हुई सेनायें भी विजय को प्राप्त हो जाती हैं। इतिहास के पृष्ठों में देखेंगे, तो अनेक युद्ध ऐसे हुए हैं, जो मात्र एक उत्साह की शक्ति के बल पर आगे बढ़ते गये। हम जब राम और रावण के युद्ध को देखते हैं, तब यह पाते हैं कि राम के अंदर सत्य था और वह सत्य ही उनका उत्साह। उसी उत्साह के बल पर राम की विजय हुई और रावण की इतनी बड़ी सेना पराजित हो गई। किसी भी क्षेत्र में आओ, चाहे व्यापार का क्षेत्र हो, चाहे खेल का मैदान हो,चाहे युद्ध का स्थल, आप किसी भी क्षेत्र में जाओगे, अगर आप में उत्साह है, तो आप उसमें सफल हो जाओगे। अगर उत्साह नहीं है, तो सफलता नहीं मिलेगी।

आप विद्यार्थी या वैरागी बने, आपका उत्साह ही आपको सफलता दिलायेगा। गुरु अपने शिष्य का उत्साह देखते हैं फिर उसको आगे बढ़ाते हैं। आप साधु के पास आते हैं, तीन- बार नमोस्तु कहते हैं, इसका उद्देश्य क्या है? उत्साह की पहचान। इसलिये आलोचना अनेक बार करने को कहा है, जिससे उत्साह बना रहे। यदि तुम्हारा उत्साह है। आत्म कल्याण के प्रति लगन है आत्म कल्याण के प्रति, तुम सफल हो जाओगे। यदि उत्साह नहीं है, तो शरीर का बल बना रहेगा और पराजित हो जाओगे।

सत्त्वोत्साहमुदीर्य।। र.क.श्रा./126।।

सामायिक के विषय में जब आचार्य संमतभद्र स्वामी कहते हैं– **सत्व और उत्साह के साथ सामायिक करना चाहिए।** सत्व (शारीरिक बल), आत्मशक्ति और उत्साह नहीं है, तो सामायिक नहीं हो सकती है। उत्साह न होने से आप कार्य करोगे तो, लेकिन कार्य करने का आनन्द नहीं प्राप्त कर पाओगे। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं– बुद्धि होना आवश्यक नहीं है, उत्साह होना आवश्यक है। आपमें उत्साह कितना है?आज आप यहाँ बैठे हैं, यह किसका प्रतिफल है? जब उत्साह शक्ति जागती है, तो रास्तों को खोल देती है। शक्ति नगर का वर्षायोग हो या भट्टारक की नसियाँ का वर्षायोग हो, यह किसका फल है? यह चातुर्मास कराने का सौभाग्य आपको आपके उत्साह ने दिया है। उत्साह तीन प्रकार का है– मानसिक उत्साह, वाचनिक उत्साह और कायिक उत्साह। भक्तामर स्तोत्र के ऐसे गूढ रहस्यों को प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो आपके सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त उपयोगी रहेंगे।

आप रोटी बनाती हैं, तो आप कहती हैं मैं चौका लगा रही हूँ, आहार बना रही हूँ। पर जब आपके घर में कोई बाई रोटी बनाती है, तो वह कहती है– मैं अपनी आजीविका चला रही हूँ। यही अन्तर है, चिन्तन भिन्न है, उत्साह भिन्न है। उत्साह अलग–अलग होता है। आधा कार्य तो तभी हो जाता है, जब कार्य उत्साह से किया जाता है, उत्साह भी सम्यक् होना चाहिए। ऐसा न हो कि जोश में आकर होश खो दे। आज के युवाओं में उत्साह तो है, लेकिन वह उत्साह किस ओर जा रहा है? उनके उत्साह की दशा गलत तो नहीं है? इसलिए सम्यक् दिशा में कितना उत्साह है? किस दिशा में है? इसको समझना आवश्यक है।

कुछ श्राविकायें बर्तन माँज रही थी, उनका मन पूर्ण रुप से उस कार्य में लीन था और सामायिक के काल में वह बर्तन माँज रही थी, बर्तन माँजने में वह बहुत आनन्द महसूस कर रहीं थी। तब मैंने

सोचा–अगर ये श्राविकायें इतने आनन्द से एक सामायिक कर लें, तो इनका जीवन धन्य हो जायेगा। प्राय: जितना उत्साह धर्म के क्षेत्र में नहीं होता, उतना उत्साह गृह कार्यों में होता है। जितने उत्साह से आप रोटी बना लेते हो, अगर उतने उत्साह के साथ आप एक णमोकार की माला फेर लें, तो आपका जीवन धन्य हो जायेगा। जितने उत्साह से आप रसोई में दो–दो, तीन–तीन घंटे रह लेते हो, उतने उत्साह से मंदिरजी में अथवा सामायिक में अथवा णमोकार मंत्र के जाप में अपना चित्त नहीं लगा सकते हैं?आप दिन भर व्यापार कर सकते हैं, लेकिन एक घंटे मंदिर में नहीं बैठ सकते हैं? पुण्य का संचय और पाप का क्षय केवल एक ही स्थान पर हो सकता है और वह है वीतराग देव की आराधना का स्थल। भक्तामर स्तोत्र केवल आदिनाथ की आराधना नहीं है। यह आराधना समस्त वीतरागी भगवान की आराधना है।

जब स्वर्ण जयंती महोत्सव में आचार्य गुरुदेव विरागसागर जी से पूछा–आपको सर्वोदयी टीका को लिखने में कितना समय लगा? गुरुदेव बोले–छयानवे दिन लगे। बारह सौ पेज की टीका आपने इतने दिनों में कैसे सम्पूर्ण कर ली? वह बोले– उत्साह था कि जीवन में संस्कृत में कोई टीका करना है। **उत्साह है तो महान से महान कार्य अल्प समय में पूर्ण हो जाते हैं।** उत्साह नहीं है, तो हस्ताक्षर मात्र भी अगर करना है तो आप एक–एक माह लगा देते हैं। यहाँ पर कुछ ऐसे लोग भी बैठे हुए हैं, जिन्हें मात्र हस्ताक्षर करने होते हैं लेकिन वह उस कार्य को करने के लिए लम्बा समय ले लेते हैं। अगर उत्साह है तो एक माह में आप एक शास्त्र लिख सकते हैं। आज हम उत्साह को सम्यक् शब्द से जोड़ें। आपका उत्साह सामाजिक, व्यापारिक, गृह कार्यों में, क्षेत्रीय कार्यों में, राजनैतिक कार्यों में लग जाता है। आप यह सोचिए आपका उत्साह किस दिशा में होना चाहिए? ठंड पड़ती है फिर भी सुबह से चौका लगा लेते हैं। चौके का कार्य करते समय आपका उपयोग ठंड पर नहीं जाता है क्योंकि आपके अन्दर उत्साह है, जो आपसे सब कार्य करवा लेता है।

उत्साह की दिशा जब सम्यक् होती है तो कठिन–कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं। माउण्ट एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने वाले तो मिल जायेंगे, लेकिन सम्मेद शिखर की चोटी पर चढ़ने वाले कितने हैं? दोनों पर्वत के ऊपर उत्साही व्यक्ति ही चढ़ पाते हैं। एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ना उत्साह तो है लेकिन सम्यक् उत्साह नहीं है। सम्मेद शिखर की चोटी या पर्वत पर चढ़ना सम्यक् उत्साह है। क्रिकेट का शतक बनाना उत्साह तो है, लेकिन सम्यक् नहीं है, पर समाधि का शतक बनाना सम्यक्

है। आप यहाँ से दस मिनिट में बाजार चले जाते हैं क्या आप दस मिनिट में घर से मन्दिर जाते हैं? **उत्साहवान प्रत्येक कार्य को समुचित रीति से सुनिश्चित समयावधि में सफल कर लेता है।**

मैना के अन्दर उत्साह था। सम्यक् उत्साह था, इसलिए कार्य सिद्ध हो गया। कोढी पति, कामदेव के समान सुन्दर हो गया। महापुरुषों के चरित्र सम्यक् उत्साह से भरे पड़े हैं। उत्साही, पथ से पीछे नहीं हटते हैं।

मेरा मार्ग, मेरा लक्ष्य, मेरा कार्य, मेरे नियम, मेरी चर्या अगर सम्यक् है, तो हमारे अन्दर की लज्जा समाप्त हो जाती है। जब उत्साह सम्यक् होता है तो उत्साही लज्जा छोड़ देता है। वह फिर यह नहीं सोचता कि उसका कार्य किसी को पसन्द आयेगा या नहीं। वह अपना कार्य करता रहता है।

एक व्यक्ति अपने पुत्र और घोड़ा के साथ घोड़ा पर जा रहा था। रास्ते में एक व्यक्ति ने देखा और वह कहता है– देखो! ये दोनों व्यक्ति घोड़ा पर बैठे हैं, दया भी नहीं आती। इतना सुनते ही दोनों नीचे उतर गये। थोड़ी–सी दूर चले ही थे कि राह में दूसरा व्यक्ति मिला। वह कहता है– अरे देखो! ये दोनों कितने मूर्ख हैं? घोड़ा साथ में है फिर भी पैदल चल रहे हैं। इतना सुन वह दोनों घोड़े पर बैठ जाते हैं, आगे बढ़ते ही तीसरा व्यक्ति मिलता है। वह कहता है– कम से कम एक तो पैदल चलता और एक घोड़े पर बैठा रहता। इतना सुनते ही पिता घोड़े से उतर गया। थोड़े दूर चलते हैं, इतने में एक महानुभाव और मिलते हैं, वे कहते हैं– कैसा मूर्ख पुत्र है? पिता पैदल चल रहा है और पुत्र घोड़े पर बैठा है। अब पुत्र घोड़े से नीचे उतर जाता है और पिता घोड़े पर बैठ जाता है। फिर पुन: ऐसा ही होता है, एक सज्जन कहते हैं–कि कैसे व्यक्ति हैं? क्यों थोड़ी–सी दूर पैदल नहीं चल सकते हैं? फिर वे दोनों घोड़े को साथ में लेकर पैदल ही चलते हैं, तब फिर एक सज्जन मिलते हैं और कहते हैं– घोड़ा साथ में लेकर चल रहे हो, और पैदल जा रहे हो, कम से कम एक तो बैठकर जा सकता था। कहने का तात्पर्य है– **लोक रीति धर्म रीति से भिन्न है।**

अगर सम्यक् उत्साह है तो आप लज्जा को छोड़कर आगे बढ़ेंगे। मुझे शर्म नहीं है, क्योंकि मेरा कार्य सम्यक् है। मैं मंगल, प्रशस्त, सम्यक् कार्य कर रहा हूँ इसलिए मैं अपने उत्साह को कम नहीं होने दूँगा। **सम्यक् उत्साह ही मेरा जीवन है।** व्यक्ति उत्साह से जीता है। जब व्यक्ति का उत्साह समाप्त हो जाता है तो उसी क्षण व्यक्ति भी समाप्त हो जाता है।

एक घटना सुनाता हूँ। एक व्यक्ति को सर्प ने काटा, परंतु उसे मालूम नहीं था कि मुझे किस जन्तु ने काटा? उसे जहर बिल्कुल भी नहीं चढ़ा। छः महीने तक उसे कुछ नहीं हुआ। दीवाली का समय समीप था, उसने सफाई की, तो देखा उस आले से उस सर्प का मरा हुआ शरीर मिला, उसे उस दिन की घटना स्मरण में आ गई। मुझे उस दिन किसी कीड़े ने नहीं, इस सर्प ने काटा था। वह व्यक्ति प्रति दिन नीम खाता था इसलिए उसे सर्प के काटने पर जहर नहीं चढ़ा और उस व्यक्ति को काटने से वह सर्प मर गया। जैसे ही उसे ज्ञात हुआ इस सर्प ने उसे काटा था, वैसे ही वह जमीन पर गिर गया और सदा के लिए चल बसा, प्राणान्त हो गया।

व्यक्ति जीता किससे है? उत्साह से। व्यक्ति मरता कब है? उत्साह हीनता से, उत्साह से जीओ। जो भी कार्य करना है, आप उत्साह रखो। कार्य पूर्ण होगा, सफलता मिलेगी। आपको उत्साह से साधु मिले हैं, भगवान भी मिलेंगे। आप को जब साधुगण अभिषेक करने को कहते हैं, तो आप कहते हो धोती–दुपट्टा पहिनने में शर्म लगती है। आप मानतुंग स्वामी का भक्तामर नहीं पढ़ रहे हैं, मैं आपको संस्कृत का भक्तामर नहीं पढ़ा रहा हूँ, आचार्य मानतुंग स्वामी के भावों को पढ़ा रहा हूँ। उनकी भक्ति से परिचित करा रहा हूँ। उनकी कितनी भक्ति थी आदिनाथ के प्रति। भगवान सामने नहीं लेकिन भक्ति उनकी की जा रही है। भगवान को मन्दिर की वेदी की अपेक्षा मन मन्दिर की वेदी पर विराजमान करो। अगर भगवान को आपके मन–मन्दिर में विराजमान हो गये, तो आपको मन्दिर में आकर भगवान का अभिषेक करने में और धोती–दुपट्टा पहनने में शर्म नहीं लगेगी।

पापी जीव को पुण्य से डर लगता है। पाप जब ज्यादा होता तो व्यक्ति डरने लगता है पुण्य से। पाप की परिभाषा है– **पुण्य से रक्षा करे। जो हमें पुण्य न करने दे, वह पाप है।** मुझे पुण्य कार्यों से कोई नहीं रोकता, मुझे मेरा पाप रोकता है। आहार मत दे, अभिषेक मत कर, पूजन मत कर, मन्दिर न जा, चौका मत लगा, साधु के पास मत जा, भक्तामर मत पढ़, यह सब हमारा पाप हमसे कहता है। आज हम पुण्य की कम पाप की ज्यादा बात मानते हैं। मेरा उत्साह मुझे मन्दिर बुला लेता है। मुझे उत्साह के कार्य करने की प्रेरणा हमारे मन से प्राप्त होती है और कुछ निमित्त पा गुरुजनों से प्राप्त होती है। मेढ़क के अन्दर भाव था, महावीर के समवशरण में जाने का। उसका भाव था जिनेन्द्र की पूजा करने जाऊँगा। उस तिर्यंच गति के जीव का भाव देखो, कितना शुभ है? जलकूप में रहता है, लेकिन फिर भी भगवान जिनेन्द्र देव के दर्शन का और पूजा का भाव कर लिया और एक आप मनुष्य हो,

जिनके घर के बाजू में मन्दिर है, लेकिन मन्दिर नहीं जाते हैं। आप तो पूजा कर सकते हो, मन्दिर आ सकते हो उस मेढ़क के अन्दर पूजा करने का भाव था। वह सोचता है कि पूजा कैसे करूँगा? वह फूल को देखता है और सोचता है कि फूल को चढ़ाकर भगवान की पूजा करूँगा। मुँह में फूल की एक पंखुड़ी दबाता है और समवशरण की ओर बढ़ जाता है। सोचता है– समवशरण की बीस हजार सीढ़ियाँ कैसे चढूँगा, राजगृही पर्वत की इतनी भीड़ में? लेकिन, किन्तु, परन्तु वाला कमजोरी कोई काम नहीं। समवशरण में जाना है। कैसी भी भीड़ हो, मैं जाकर रहूँगा और आगे बढ़ जाता है।

जिसके पास उत्साह होता है, वह आगे बढ़ जाता है और सफलता को प्राप्त कर लेता है। जिसके पास उत्साह है, उसके पास सफलता है। जिसके पास उत्साह नहीं है उसके पास असफलता है। आपका कार्य में असफल होना यह सिद्ध करता कि कार्य को पूर्ण प्रयत्न से नहीं किया गया, कहीं न कहीं कमी है। अधूरे मन से किये गये कार्य में असफलता मिलती है।

कभी आप मुहूर्त भी न देखें, मुहूर्त देखकर कार्य न भी करें। आप सदा यह देखें, कि जिस कार्य को आप करने जा रहे हैं, उस कार्य को करने के लिए आपका मन कितना राजी है? आपका मन क्या कह रहा है? मन कहे, तभी आप उस कार्य को करो, अन्यथा न करें। इस प्रकार से जो भी शुभ कार्यों के निर्णय लोगे, निर्णय सही होंगे।

मेंढ़क फुदकता–फुदकता आगे बढ़ता जा रहा है। प्रसन्न है, उत्साह है, इच्छा है दर्शन की, भावना है, आगे बढ़ता जा रहा है। उसे पूर्व जन्म के मन्दिरों के जिनेन्द्र देव के दर्शन हो रहे हैं। चला आ रहा है, चला आ रहा है। राह में चल रहा था, कैसा होगा समवशरण? कैसे होंगे महावीर? ऐसा सोचता हुआ आगे बढ़ रहा है। चलते हुए उसकी एक छलांग तिरछी लग जाती है। तिरछी छलांग लगाते ही वह हाथी के पैर के नीचे पहुँच जाता है और उसका मरण हो जाता है। वह स्वर्ग में पहुँचता है, उसे स्मरण हो जाता है कि वह महावीर के समवशरण में जा रहा था और राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे पड़ जाने से वह मेंढक पर्याय को छोड़कर स्वर्ग का देव बना है। जैसे ही स्मरण आता है वह सीधा स्वर्ग से महावीर भगवान के दर्शन को आ जाता है। वहाँ राजा श्रेणिक हाथी पर बैठा है, यहाँ मेंढक समवशरण में आ जाता है। **जीव की भावनायें जीव को वहाँ पहुँचा देती है जहाँ वह जाना चाहता है।** मात्र दर्शन और पूजन का भाव था, वह पूजन द्रव्य से तो नहीं कर पाया, उसने

भावों से पूजन अवश्य की। जब एक कुयें का मेंढ़क वीतराग का भक्त हो सकता है, तो आप भी भावना उत्साह जागृत कर घर के बाजू में बने मन्दिर में जा सकते हो। **भावना भव नाशनी होती है।**

राजा श्रेणिक जब महावीर भगवान के समवशरण में पहुँचता है तो उसे वहाँ मेंढक चिन्ह वाला स्वर्ग से आया देव दिखाई दिया। वह महावीर भगवान से निवेदन करते हुये पूछता है– हे भगवन्! इस देव के मुकुट पर मेढक का चिन्ह क्यों ? यह कौन है?

भगवान महावीर कहते हैं– हे मगध नरेश! यह आपके नगर के कुयें में रहने वाला मेंढक है, जो उत्साह से पूजा का भाव लिये समवशरण की ओर चला आ रहा था। उसी समय तिरछी छलांग लग जाने से यह आपके हाथी के पैर के नीचे आ गया और मरण को प्राप्त हो गया। मरण को प्राप्त होने के बाद यह मेंढक शुभ भावों के कारण देवगति में आ गया। एवं वहाँ पहुँचकर अवधि ज्ञान से जाना कि वह मेंढक था, समवशरण में जाते समय रास्ते में मरण को प्राप्त हुआ, जैसे ही उसे यह मालूम पड़ा, तत्काल वह समवशरण में आ गया। पूर्व पर्याय में मेंढक होने के कारण इसके मुकुट में मेंढक का चिन्ह बना हुआ है। जिनेन्द्र देव के दर्शन का भाव था इसलिए स्वर्ग का देव हुआ। आप भावनायें अच्छी रखें, आपको भी स्वर्ग मिलेगा।

प्रत्येक जीव को अच्छे कार्य करने की स्वतंत्रता है और वह अपने भावों को जिस ओर ले जाना चाहे, उस ओर ले जा सकता है। शुभ भाव करके जिनेन्द्र भगवान के पास जा सकता है, अशुभ भाव करके नरक तथा सुखी जीवन को दुःखी बना सकता है।

एक सेठ जी सामायिक करने बैठे थे, पुण्य कर रहे थे, लेकिन भीतरी भावों में पानी पीने की इच्छा जागृत हो जाती, तो वह जलाशय में जन्म ले लेता है और अशुभ–भाव कर पाप रूप परिणाम कर बावड़ी में मेंढक बन जाता है वही जलाशय का मेंढक देखिये! शुभ भाव कर स्वर्ग पहुँच जाता है। **भावों को शुभ करो, शुभ होगा।**

*****

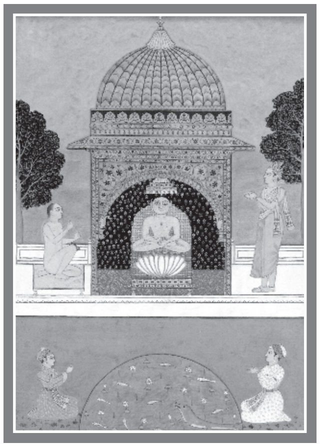

जिनेन्द्र के अवर्णनीय गुण

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशांक-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बु-निधिं भुजाभ्याम्।।4।।

अन्वयार्थ :

गुण समुद्र	– गुणों के सागर	ते	–	तुम्हारे
शशांक	– चन्द्रमा की कांति के समान	कान्तान्	–	सुन्दर
गुणान्	– गुणों को	वक्तुं	–	कहने के लिये
बुद्ध्या	– बुद्धि से	सुरगुरु	–	देवों के गुरु बृहस्पति के
प्रतिमः	– समान	अपि	–	भी
कः	– कौन	क्षमः	–	समर्थ है?
कल्पांत काल	– प्रलय काल की	पवन	–	वायु से
उद्धत	– प्रचण्ड हुए	नक्र चक्रं	–	मगरमच्छों से सहित
अम्बुनिधिम्	– समुद्र को	भुजाभ्याम्		– दो भुजाओं से
तरीतुम्	– तैरने के लिये	को वा	–	कौन पुरुष
अलम्	– समर्थ है? अर्थात् कोई भी नहीं।			

भावार्थ :

हे गुण सागर! चन्द्रकांति के समान उज्ज्वल आपके गुणों का वर्णन करने के लिए सुरगुरु भी समर्थ नहीं हैं जैसे कि प्रलयकाल की वायु से उछलते हुए और मगरमच्छों से भरे हुए समुद्र को भुजाओं से तैरकर पार पाने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

जल-जन्तु भय मोचक

भावानुवाद

हे गुणसागर! शरद चन्द्रसम, उज्ज्वल गुण गाने।
सुरगुरु भी सामर्थ्य न रखता, तव गुण गा पाने।।
मगर–मच्छ भी उछल रहे हों, लहर भयंकर हो।
कौन भुजाओं से तर सकता, ऐसे सागर को ।।4।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्राजलदेवताभ्यो नमः स्वाहा ।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं नानादुःखसमुद्रतारणाय क्लीं महाबीजाक्षर–सहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

अपार गुणसागर

वक्तुं गुणान् गुण–समुद्र! शशांक–कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर गुरु–प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त–काल–पवनोद्धत–नक्र–चक्रं,
को वा तरीतुमल–मम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।4।।

भावार्थ– हे गुणसमुद्र! जिस प्रकार प्रलयकाल की वायु से प्रचण्ड एवं मगरमच्छों के समूह से युक्त समुद्र को कोई पुरुष अपनी भुजाओं से पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार चन्द्रमा के समान सुंदर आपके अनंत गुणों का वर्णन सुरगुरु के समान बुद्धिमान पुरुष भी नहीं कर सकता।

प्रिय आत्मन्!

स्तुति पुण्य–गुणोत्कीर्तिः।।

पुण्य गुणों का कथन **स्तुति** कहलाता है। स्तुति के विषय में जिनसेन स्वामी सहस्रनाम स्तोत्र में यही लिखते हैं पुण्य गुणों का, पवित्र गुणों का, प्रशंसनीय गुणों का वर्णन करना, कथन करना, गुणगान करना, स्तवन करना स्तुति कहलाता है। तब मैंने समंतभद्र स्वामी से पूछा– हे गुरुदेव! स्तुति करने से क्या होता है? तब आचार्यश्री समंतभद्र स्वामी कहते हैं–

स्तवनात् कीर्तिः तपोनिधिषु।। र.क.श्रा./115।।

तपोनिधियों के गुणों का स्तवन करने से **कीर्ति की प्राप्ति** होती है। हमें यश कहाँ से मिले? हम इतना अच्छा कार्य करते हैं, हमें यश क्यों नहीं मिलता? मात्र अच्छे कार्य से ही यश नहीं मिलता है, अपितु **यश पूज्य पुरुषों का स्तवन करने से मिलता है। जिनेन्द्र की पूजा करने से यश मिलता है।**

आप अपने परिवार की निरंतर सेवा करते हैं, दिन–रात सेवा किये जा रहे हैं, परिश्रम से कमाया हुआ धन पड़ोसी की सेवा में खर्च कर रहे हैं, फिर भी यश नहीं मिल रहा है। इधर–उधर की सेवाओं में दान दे रहे हैं, यश नहीं मिल रहा है। आचार्यश्री मानतुंग स्वामी ने एक बार भक्तामर स्तोत्र रचा और उनका स्तोत्र अमर हो गया सुयश अमर हो गया।

राम तुम्हारा जीवन स्वयं काव्य है।
कोई कवि बन जाये, सहज संभाव्य है।।

स्तवन करने से, स्तुति करने वाला स्तोता अमर हो जाता है। **स्तवन करने से यशस्कीर्ति मिलती है।** इसका कारण है– पूज्य पुरुषों का आश्रय है। हे राम! तुम्हारा तो जीवन सहज काव्य है और आपके जीवन को लिखते हुये कोई कवि बन जाये यह सहज बात है। सम्भव है कोई भी कवि बन सकता है। आदिनाथ का जीवन ही स्तुति है। आपके तो गुण ही स्तुति है। आप पर जो लिखेगा वह स्तोता, वह स्तुतिकार, निश्चित ही कीर्ति को पायेगा। आदिनाथ की स्तुति करने वाले आचार्य भगवन् मानतुंग स्वामी जयवन्त हो गये, अमर हो गये। पूजा करने वाला अमर हो ही जाता है। **संसार में दोषों का कहना आसान है, परन्तु गुणों का कहना कठिन है।** दोषों को कहने के लिये कुछ भी नहीं चाहिये, पाप कर्म के उदय के सिवाय। गुणों को कहने के लिये पुण्य का उदय चाहिये। दोषों को कहने के लिये पाप परमाणु चाहिये। जिसके पास जो परमाणु होंगे, वह वैसा उपयोग करेगा।

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य, तदबहुत्व कथास्तुतिः।
आनन्त्यात ते गुणा वक्तु मशक्यास्त्वयि सा कथम् ।।86।।

स्वयंभू स्तोत्र

थोड़े गुणों का सम्यक् प्रकार से कहना **स्तुति** कहलाता है। जैसे–पानी की बूँद को समुद्र कहना स्तुति हो गया है। जिनेन्द्र देव आपके गुण तो अनन्त होते हैं। हे भगवन! आपके गुण तो अपार हैं। जैसे–समुद्र में जल की राशि अपार है। जितनी भी नदियाँ बहती हैं, वे सब समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। जैसे संसार में बादलों से बरसने वाला पानी नदियों तक पहुँच जाता है और नदियों से बहकर जल समुद्र में पहुँचकर उसकी विशालता को बढ़ाता है। उसी तरह संसार के जितने महान गुण हैं, वे सब आप में हैं और आपके गुणों ने, गुणों को एवं आपके गुणों के कहने वाले को महान बनाया है। गुणों ने एवं गुणी ने जिनेन्द्र भगवान का आश्रय लिया है। आप गुणों के सागर हैं। गुण क्या हैं?

द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः ।। त.सू./5/41।।

जो द्रव्य के आश्रय से होता है, वह गुण कहलाता है। एक आत्मा का गुण कभी दूसरी आत्मा के पास नहीं पहुँचता है। पुत्र का गुण पिता के पास नहीं पहुँचता, शिष्य का गुण गुरु के पास नहीं पहुँचता। गुरु का गुण शिष्य के पास नहीं पहुँचता। एक आत्मा अपना गुण दूसरी आत्मा को नहीं दे सकता है। यह बाजार की गल्ला मण्डी नहीं कि पहले व्यापारी ने पूरा माल खरीद लिया, और मेरे लिये तो कुछ बचा ही नहीं।

यस्य स्वयं स्वाभावाप्ति, रभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय, नमोऽस्तु परमात्मने।। इष्टोपदेश/1।।

गुण तुम्हारा स्वभाव है और स्वभाव भीतर से प्रकट होता है। जैसे जमीन को खोदने से पानी प्रकट हो जाता है वैसे ही स्वभाव की खोज करने पर गुण प्रकट होते हैं। प्रत्येक आत्मा में अनंत गुण हैं। किसी के पास शक्ति रूप में है, किसी के पास अभिव्यक्ति के रूप में है। हम सब के पास शक्ति रूप में है, जिनेन्द्र भगवान के पास अभिव्यक्ति के रूप में है। पूजा शक्ति की नहीं, अभिव्यक्ति की होती है। जैसे– बीज में वृक्ष है, चकमक में आग है, पाषाण में प्रतिमा है, दूध में घी है, तिल में तेल है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा में परमात्मा है। व्यापार में कभी किसी से पैसे उधार ले सकते हैं, लेकिन गुण किसी से उधार नहीं ले सकते हैं।

भगवान ने किसी के गुण नहीं लिये हैं। भगवान ने अपने गुण स्वयं प्रकट किये हैं। इसलिये सिद्धालय में अनंतानंत सिद्ध भगवान हैं, सिद्धालय में निगोदिया जीव भी रहते हैं परन्तु सिद्ध भगवान उन निगोदियाँ जीवों को अपना एक भी गुण नहीं दे पाते हैं। सिद्ध भगवान अनंत सुखी हैं और निगोदिया जीव वहीं पर अनंत दुःख भोग रहा है। कोई किसी को कुछ नहीं दे पाता है। गुरु तुम्हारे गुणों को प्रकट करने में निमित्त बन सकते हैं, लेकिन गुणों को तो तुम्हें ही प्रकट करना होगा। कुआँ खोदने की मशीन निमित्त बन सकती है। यदि जमीन में पानी है, तो पानी निकल सकता है। आचार्य कहते हैं– समुद्र में जल की राशि कितनी है। आप देख सकते हैं, लेकिन माप नहीं सकते हैं, गणना नहीं कर सकते हैं। उसी तरह भगवान के गुण निर्मल हैं , अनंत हैं। जो–जो गुण कहते जाओ जैसे अनंत दर्शन जिनेन्द्र का गुण है, अनंत सुख जिनेन्द्र का गुण है, केवलज्ञान जिनेन्द्र का गुण है, **जितने भी गुण हैं, वे सब जिनेन्द्र के नाम हैं।** गुणों के कथन करने में कोई सक्षम नहीं है। सारा संसार दोषों को कहने तैयार बैठा है। लेकिन आप जो ठहरे हो कि आपने सभी कर्मों की तथा अपने दोषों की हानि कर दी है।

देवागम नभोयान चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ।।आ.मी.1।।

आपके पास देवों का आना हो रहा है, आकाश से पुष्पों की वर्षा हो रही है, चमरों का ढुरना हो रहा है, समवशरण रचा हुआ है, लेकिन इस कारण से आप हमारे लिये नमस्कार के योग्य नहीं हो,

मैं इसलिये नमस्कार नहीं करता हूँ कि आपको सौधर्म इन्द्र नमस्कार कर रहा है, मैं इसलिये भी नमस्कार नहीं करता हूँ कि देव आपके पास आते हैं, इसलिये भी नमस्कार नहीं करता हूँ कि आपके ऊपर चमर ढुरे जा रहे हैं। हे जिनेन्द्र! यह खेल तो कोई जादूगर भी दिखा सकता है।

दोषावरणयोर्हानिर्नि:शेषाऽस्त्यति–शायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय:।।आ.मी.।।

हे जिनेन्द्र! आप में जो दोषों की हानि पायी जाती है, वह दोषों की हानि अन्य किसी में नहीं पायी जाती है। जो दर्शनावरण, ज्ञानावरण कर्म हानि आपने की है, वह कर्म हानि हर किसी में नहीं पायी जाती है। इसलिये आप मेरे लिये पूजनीय हैं, नमस्करणीय हैं। आपके गुणों को कहने में कोई सक्षम नहीं है।और दोष आपमें हैं नहीं। जो है नहीं उसे कहा क्या जाये? जो हैं वह अनंत गुण रूप हैं उसे कह नहीं सकते। जो हैं उनके विषय में क्या कहें? और जो गुण हैं वे अनंत हैं उनके विषय में क्या कहें?

का कहें कछु, कहीं न जाय।
कहे बिना मोपे, रहो न जाय।।

क्या कहूँ? क्योंकि अनंत गुण हैं। आपका भक्त हूँ इसमें से एक न एक गुण कहकर निर्जरा कर लेता हूँ। मैं गुण गाऊँ या न गाऊँ आपको कुछ न हीं मिलना है। जैसे– छत्र को ऊपर धारण करता हूँ तो सूरज को कुछ नहीं मिलता है, छाया तो स्वयं को मिलती है। तू सूरज के लिये क्या छत्र लगायेगा? तू जिनेन्द्र के क्या गुण गायेगा? जिनेन्द्र के गुण को गाके तु अपने गुणों को प्रकट कर रहा है।

सौधर्मेन्द्र कह रहा है कि मैंने स्तुति करना छोड़ दिया मेरा अभिमान दूर हो गया है, मैं द्वादशांगज्ञान का धारी था, मेरे पास बहुत बुद्धि थी। लेकिन इन्द्र तुमने प्रयास छोड़ दिया तो क्या मैंने छोड़ दिया? नहीं। मेरे भगवान्, मैं तो स्तुति करूँगा। इन्द्र! तुम्हारे पास बहुत ज्ञान था, तुम उपयोग नहीं कर पाये, तुमने नहीं किया, लेकिन मैं थोड़े से ज्ञान से स्तुति करूँगा।

तुम्हें दरवाजा दिया था,
मैंने एक झरोखा लिया था।
तुम्हारे लिये तो पूरा आकाश था,
मैंने तो छोटा–सा दूरबीन लिया था।

जो चीज तुम्हें आकाश में दिखाई नहीं देती है, वह चीज मुझे दूरबीन में दिखाई दे रही है। हे इन्द्र! यदि तू मेरे भगवान की स्तुति नहीं कर पाया तो यह मत सोचना मैं नहीं कर पाऊँगा। मैं कर लूँगा। हिम्मत हार के मत बैठना। उत्साह मति, उमंगमति, तरंगमति, नई उमंगें, नया उत्साह, नयी तरंगे लेकर चलना हैं। इन्द्र पराजित हो गया, पर मैं पराजित होने वाला नहीं हूँ। जो कार्य तलवार नहीं कर पाती है वह कार्य हम सुई से भी कर लेते हैं। इन्द्र तुम स्तुति नहीं कर पाये कोई बात नहीं, मैं तो स्तुति करके ही रहूँगा।

कभी–कभी जो कार्य सरसों के दाने से हो जाता है, वह कार्य बड़े से बड़े उपायों से नहीं होता है।यह संसार समुद्र बहुत कठिन है। आप गुण के समुद्र हैं, पुण्य के परमाणु उदय में आने पर ही हम स्तुति गा सकते हैं। यदि पुण्य परमाणु का उदय नहीं चल रहा है, तो हम स्तुति नहीं गा सकते हैं। जब भी भक्तामर स्तोत्र पढ़ने–सुनने का भाव बने, समझ लेना मेरा पुण्य परमाणु का उदय आ गया है।

एक चित्रकार था। उसने बहुत अच्छा चित्र बनाया, चौराहे पर टांग दिया और लिख दिया, इसमें जो–जो दोष हो, आप इसमें निशान लगा दें। उस चौराहे से जो भी निकला, उस-उसने दोष देखे और निशान लगाये। शाम को जब चित्रकार आया और उसने देखा कि चित्र गंदा हो गया है। पूरे चित्र में इधर दोष, उधर दोष, सैंकड़ों निशान लगे हुये थे। चित्रकार ने दूसरे दिन दूसरा चित्र बनाया और उसमें लिख दिया कि इसमें जो गुण हो वह नीचे लिखें। सुबह से शाम तक चित्र टंगा रहा, किसी ने कुछ नहीं लिखा, इसमें क्या गुण है? इससे सिद्ध होता है कि गुणों को चाहने वाले बहुत हैं, पर उन गुणों को गुण कहने वाले बहुत कम हैं। दोष चाहने वाले बहुत कम हैं, किन्तु दोष बताने वाले बहुत हैं। **गुणों को ग्रहण करना है तो गुण श्रवण भी करना पड़ेगा।**

दोषों को कहने, सुनने की अपेक्षा आप दोषों को अपने जीवन से बाहर निकालें। हमारे कई जन्मों के पुण्य संस्कार हैं लेकिन गुणों को न कहा है और न सुना है। इसलिये गुण कहना बहुत कठिन है। तो भी, **गुणों को श्रवण करो फिर ग्रहण करो, इससे आपको दूसरों के दोष नहीं, गुण ही दिखेंगे।**

*****

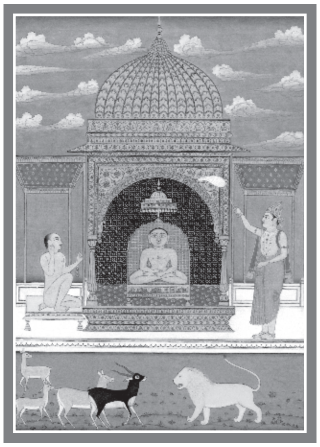

भक्ति की प्रेरणा

सोऽहं तथापि तव भक्ति –वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत–शक्ति –रपि प्रवृतः।
प्रीत्यात्म वीर्य मविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्।।5।।

अन्वयार्थ :

मुनीश	– हे मुनियों के ईश्वर!	तथापि	– फिर भी
अहम्	– मैं	सः	– वह
विगत–शक्तिः	– शक्ति रहित होकर	अपि	– भी
तव	– तुम्हारी	भक्तिवशात्	– भक्ति के वश
स्तवं	– स्तुति	कर्तुं	– करने के लिये
प्रवृत्तः	– तैयार करता हूँ	मृगी	– हरिणी
आत्म वीर्यम्	– अपनी शक्ति को	अविचार्य	– विचार नहीं करके
प्रीत्या	– प्रीति वशात्	निज शिशोः	– अपने शिशु को
परिपालनार्थम्	– बचाने के लिये	किम्	– क्या
मृगेन्द्रम्	– सिंह के सन्मुख	न अभ्येति	– नहीं जाती है? अर्थात् जाती है।

भावार्थ :

हे मुनीनाथ! वह मैं शक्ति हीन हो भक्ति के वशीभूत हुआ आपकी स्तुति करने तैयार हूँ। जैसे अपनी शक्ति का विचार किये बिना भी शिशु नेह में रंगी हरिणी क्या अपना वत्स बचाने के लिए सिंह के सम्मुख अपना प्रयास नहीं करती क्या? करती ही है।

नेत्र-रोग संहारक

भावानुवाद

वह मैं हूँ जो शक्ति बिना भी, भक्तिवशी होके।
संस्तव करने को तत्पर हूँ, बस तेरा होके।।
सिंह के सम्मुख जाती हरिणी, सुध–बुध को खोके।
अपना वत्स बचा लेती है, प्रीतिवती होके ।।5।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं सकलकार्यसिद्धिकराय क्लीं महाबीजाक्षर–सहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

नाम महिमा

सोऽहं तथापि तव भक्ति वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत–शक्ति–रपि प्रवृतः।
प्रीत्यात्म–वीर्य–मविचार्य–मृगी–मृगेन्द्रम्
नाभ्येति किं निज–शिशोः परिपालनार्थम्।।5।।

भावार्थ– हे मुनिजनों के आराध्य देव! यद्यपि आपके अनन्त गुणों का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है, फिर भी आपकी भक्ति के वशीभूत हुआ मैं स्तुति करने के लिये तत्पर हो रहा हूँ। सभी जानते हैं कि हिरणी कितनी ही शक्ति रहित क्यों न हो? किन्तु अपने बच्चे की रक्षा के लिये वात्सल्य भाव के वशीभूत आक्रमण करते हुये सिंह का मुकाबला करने के लिये सामने डट जाती है। (उसी प्रकार मैं भी भक्तिवश अपनी शक्ति का विचार किये बिना स्तुति करने के लिये तत्पर हो रहा हूँ।)

हिरणी अपनी शक्ति को शिशु वात्सल्य के कारण भूल जाती है और मैं मानतुंग अपनी शक्ति को भी भक्ति के कारण भूल रहा हूँ।

प्रिय आत्मन्!

भक्तामर स्तोत्र जैन जगत का महान स्तोत्र है। यह भक्तामर स्तोत्र जैन जगत की अपूर्व निधि है, जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में मान्य है। सभी इस स्तोत्र को इष्ट एवं प्रिय स्तोत्र मानते हैं। यहाँ तक कि, अनेक श्रावक इस स्तोत्र को पढ़ने–सुनने के बाद ही भोजन ग्रहण करते हैं। इस स्तोत्र की महान महिमा है। इसके पाठ से अंतरंग में विशुद्धि जागृत होती है, कार्यसिद्धि होती है, श्रद्धा बलवती होती है और आत्मा शुद्ध होती है। आप इसे लौकिक कार्यसिद्धि के लिये नहीं अपितु आत्मा में विशुद्धि लाने के लिये पढ़ें। **बुद्धि वही है, जो विशुद्धि की ओर ले जाये।** स्तोत्र को पढ़ने में लगी हुई बुद्धि, विशुद्धि की ओर ले जाती है।

सा विद्या या विमुक्तये।।

विद्या वह है जो मुक्ति के लिये हो। स्तोत्र के वाचन में, पारायण में, गुणगान में लगी हुई विद्या मोक्ष को साधती है। इसलिये जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया, ऐसे आचार्य मानतुंग स्वामी भक्ति का

लोभ संवरण नहीं कर पाये। आप जानते हैं– **भक्ति का लाभ मुक्ति का लाभ है।** भक्ति ही परम्परा से मुक्ति की ओर ले जाने वाली है।

यह भक्ति का लाभ मुझे रत्नत्रय की अनुकूलता देता है, रत्नत्रय के पालन योग्य साधन जुटाता है। धन्य हैं – वे महान मुनिराज आचार्य मानतुंग स्वामी जिन्होंने एक–एक छंद में मंत्र भर दिये, उनकी महान साधना, आगम, अध्यात्म, न्याय, अलंकार, भाषा, विज्ञान से ओतप्रोत है। वे महान शास्त्रकार, शास्त्री, वैज्ञानिक, वैयाकरण, छंद शास्त्र के ज्ञाता, रसशास्त्र एवं अलंकार शास्त्र के भी ज्ञाता थे, कवि थे, भक्त थे एवं गुणों से अनुराग करते थे। इतने महान आदिनाथ भगवान के भक्त को हम उपमाओं में नहीं माप सकते हैं। क्योंकि उनकी भक्ति एक का कल्याण करने के लिये नहीं थी अपितु उनकी भक्ति ने कोटि–कोटि जीवों का कल्याण किया है। ऐसी भक्ति करने वाले आचार्य मानतुंग स्वामी को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

माँ, एक बेटे को शिक्षा देती है। शिक्षक, सौ विद्यार्थियों को शिक्षा देता है। प्राचार्य, एक हजार को शिक्षा देता है। किन्तु हे आचार्य! आपकी महिमा को हम क्या गायें? आपने एक बार भक्तामर स्तोत्र पढ़ा और आज पूरा राष्ट्र इसे पढ़ रहा है। इस स्तोत्र को सदियों से भव्य जीव पढ़ते आ रहे हैं और सदियाँ गुजर गई, आपके सिद्धान्त ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं। भले ही गंगा का प्रवाह सूख गया हो, नर्मदा का पानी भले ही रुक गया हो, किन्तु आपकी सरस्वती अविराम झर–झर झरती आ रही है। आचार्य मानतुंग स्वामी ने जो भक्ति की गंगा प्रवाह की है, वह सदियों से बहती आ रही है और सदियों तक बहती रहेगी। यह पवित्र स्तुति परम्परा धन्य है, भाषा इतनी सरल है कि इसे सभी जीव भक्ति भाव से समझकर नमस्कार करते हैं, आराधना और उपासना करते हैं। इस स्तोत्र की उपासना आदिनाथ की उपासना है।

भक्तामर का आभा वलय भक्ति को बढ़ाता है, पुण्य को बढ़ाता है और पाप का क्षय करता है। पाँचवें काव्य में शक्तिहीन होने के बाद भी आराधना में मानतुंग स्वामी कहते हैं– हे प्रभु! मैं शक्तिहीन हूँ, मुझे लगता है, आचार्य मानतुंग स्वामी समयसार के अच्छे ज्ञाता थे, नियमासार के प्रकृष्ट विद्वान थे और उन्होंने कुंदकुंद को जिया था, समंतभद्र को जिया था, पूज्यपाद के लक्षण उनमें थे, वे नैयायिक थे, माणिक्यनंदी का न्याय उनके पास था। अकलंक की तार्किक विद्या उनके पास थी। इसलिये वह कहते हैं –

सोऽहं – मैं वह हूँ।

एक व्यक्ति जेल में सांकलों से बंधा हुआ है। वह जान रहा है, मैं कौन हूँ? अंतस्थ चेतना में ज्ञान विद्यमान है, बाहर से सांकलें बंधी है। मैं सांकल वाला नहीं हूँ, मैं कैदी नहीं हूँ, मैं बंधक नहीं हूँ? कोऽहं मैं कौन हूँ? वह स्वयं से यह पूछ रहे हैं और कह रहे हैं अब अहं की नहीं, सोऽहं की आवश्यकता है।

अहं तजो, सोहं भजो

अहं को नहीं सोऽहं को देखो। तुम देख रहे हो, मैं सांकलों से बंधा हूँ, लोहे की सांकलें मेरे तन को बांधे हैं। अरे ज्ञानी! मेरे ज्ञान को बांधने वाली सांकलें संसार में नहीं है, मेरे स्वभाव को बांधने वाली सांकलें संसार में नहीं है।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणइयो सदारूवी।
ण वि अत्थ मच्झ किंचि वि अण्णं परमाणु मित्तं पि।।38।। स.सा.।।

मैं एक हूँ। नियम से शुद्ध स्वभाव वाला हूँ। मैं दर्शन ज्ञानमयी हूँ। रूप रंग वाला मैं नहीं हूँ काला गोरा मैं नहीं हूँ। मेरा रूप नहीं हैं, मेरा कुछ भी नहीं है, मैं कुछ भी नहीं हूँ। संसार का परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

परम आकिंचन्य स्वरूपोऽहं।।

मैं परम आकिंचन्य स्वरूप हूँ।

देखे चेतन, दिखे अचेतन, तो फिर क्यों देखे?
देखने वाला दिखे न तुझको, तो फिर क्यों देखे?

देखने वाला चेतन, दिखने वाला अचेतन। जो देख रहा है वह चेतन है, जो दिख रहा वह अचेतन है। जो अनुभव कर रहा है वह चेतन है। जो अनुभव हो रहा है या अनुभव में आ रहा है वह अचेतन है। अनुभव में दोनों आते हैं, चेतन भी और अचेतन भी, पर बाहर के अनुभव में अचेतन आयेगा, और भीतर के अनुभव में चेतन आयेगा। अनुभव करने वाला, स्वसंवेदन करने वाला, वेदन करने वाली आत्मा चेतन है। स्व का अनुभव कराने वाली आत्मायें कौन–कौन–सी हैं? सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती, धर्मध्यानी, शुक्लध्यानी...

स्वसंवेदन सुव्यक्ततस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकिनः।।20।।इष्टोपदेश।।

आत्मा कैसे व्यक्त होती है? स्वसंवेदन से व्यक्त होती है। स्वानुभूति से व्यक्त होती है, प्रकट होती है। जितना मेरा शरीर है, उतनी मेरी आत्मा है। शरीर के बाहर आत्मा कहाँ? आत्मा के बाहर ज्ञान कहाँ? ज्ञान के बाहर निज ज्ञेय कहाँ?

आदा णाण पमाणं णाणं णेयप्पमाण मुदिट्ठं।

णेय लोयालायं, तम्हा लोयप्पमाण।।

आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ज्ञेय लोकालोक है।

प्रिय आत्मन्!

जो णादा सोऽहं।।

जो कर्ता है वह मैं नहीं हूँ, जो भोगता है वह मैं नहीं हूँ, जो ज्ञाता है, जानने वाला है, वह मैं हूँ। मैं अपनी आत्मा को जानने वाला हूँ, निज को जानने वाला हूँ पर को जानने वाला नहीं हूँ। कर्ता–भोक्ता की दृष्टि वीतराग विज्ञान में नहीं है। अध्यात्म के इस महल में कर्ता–भोक्ता का प्रवेश नहीं है। जब आचार्य मानतुंग स्वामी स्वयं कहते हैं– कर्ता–भोक्ता का प्रवेश कर्तृत्व बुद्धि में है, जो हमेशा दुःख देती है। भोक्तृत्व बुद्धि दुःख को औ कतृत्व बुद्धि अहं को जन्म देती है। अरे ज्ञानी पुरुषो! सुनो! कितना ही प्रयास तू कर लेना, जब तक उस जीव का पुण्य है, तब तक तू उस जीव की सेवा करेगा। उस जीव का पुण्य जैसे ही क्षय होगा, तू लाख प्रयास कर लेना उसकी सेवा नहीं कर पायेगा।

अगर पिता बेटे की सेवा कर रहा है तो उस जीव का पुण्य तुझसे सेवा करा रहा है। तू उसके लिये कुछ नहीं कर रहा है। उसका पुण्य क्षय होने पर तू उसकी सेवा नहीं करेगा। इसलिये कर्तृत्वपने की बुद्धि का त्याग करो। भोक्तृत्व की बुद्धि का त्याग करो। भोगना है तो संतों की तरह भोगों, मनुष्यगति का सर्वोत्कृष्ट सुख। सुख हो, चाहे दुःख हो, समता से सहन करो। भोगों के पीछे नहीं भागो अपितु संतों के, वीतराग साधु के पीछे भागो। भोगों को भोगने से भोग मिटते नहीं हैं, दुःख बढ़ते हैं, तथा पापों में वृद्धि होती जाती है। सोने से, रोने से संक्लेश मिटेगा नहीं, इसीलिए मैं कहता हूँ–

तनाव में सोना नहीं,

परेशानियों में रोना नहीं।।

उदाहरण के लिये यह एक पुस्तक है, इसमें मैंने एक पेन रख दिया और पुस्तक को बंद कर

दिया। अब इस पुस्तक को हम आज, कल या परसों, जब भी खोलेंगे वह पेज निकलेगा, जहाँ पेन रखा। जहाँ छेपा (क्षपक) लगाया है। वहीं पर पहुँचेंगे, यदि आप तनाव, विकल्प, संक्लेश में सो गये, तो आप जब भी जागोगे चाहे आज जागो, चाहे कल जागो, चाहे माह बाद जागो, जब भी जागोगे तनाव, विकल्प, संक्लेश में ही जागोगे। जैसे पुस्तक के बीच में पड़ा पेन, उसी पेज पर पहुँचाता है जहाँ पर पेन रखा था। किताब से पेन निकालने पर आप उस पेज को सीधा नहीं निकाल पायेंगे, उसी तरह मन का विकल्प, तनाव, संक्लेश समाप्त करो पूरी आत्मा आपकी हो जायेगी।

जो ज्ञाता है, वह मैं हूँ। जानने वाला मैं हूँ। जानना बुरा नहीं, जानने के बाद राग–द्वेष करना बुरा है। जो सर्वज्ञ हैं, उनके ज्ञान में सभी झलक रहे हैं, उन्हें विकल्प, राग–द्वेष नहीं हैं, इसलिये कुछ हानि नहीं है। वह व्यक्ति बुरे हैं। यह हमारे मन में राग–द्वेष है, इसलिये कोई अच्छा लगता है कोई बुरा लगता है। जो बुरा करता है वह अच्छा लगता है। जो अच्छा करता है वह बुरा नहीं लगता है।

जिससे हमें राग होता है वह हमारे साथ बुरा भी करें, तो अच्छा लगता है, और जिससे हमारा राग न होकर द्वेषभाव है वह जो भी करें, वह हमें बुरा लगता है, वह हमारा अच्छा भी करें, तो भी बुरा लगता है।

प्रिय आत्मन्!

अच्छा बुरा तो बाहर में है नहीं, भीतर की कल्पना का जाल है– अच्छा–बुरा लगना। राग के उदय में अच्छा, द्वेष के उदय में बुरा लगता है। यह परम सत्य है कि प्रत्येक माँ को अपना बेटा अच्छा लगता है और पड़ौसी का बेटा अच्छा कार्य करें तब भी बुरा लगता है। एक पर्वत नाम का बेटा है और उसकी माँ को पर्वत की प्रत्येक क्रिया सुख प्रदान कर रही है। उसे अपने बेटे की गलत क्रिया भी सही लग रही है। पर्वत, अज शब्द का अर्थ बकरा बता रहा है। माँ जानती है कि यह इसका गलत अर्थ बता रहा है, लेकिन फिर भी वह उसे कुछ नहीं कहती है। उसका राग इतना तीव्र है कि उस रागवश वह उसकी गलती नहीं बता रही है। हे माँ! ये तेरा क्षण भर का राग बेटे को नरक भेज देगा। हे माँ! तू उसे अज शब्द का अर्थ सही बता, अन्यथा तेरे इस राग से धर्म की हानि होगी। इसलिये अज का अर्थ बकरा नहीं, तीन वर्ष पुराना धान्य है। **रागवश कभी धर्म को हानि न पहुँचे, ऐसा कार्य करना। धर्म में गलत मान्यताओं का विकास प्रचार–प्रसार का प्रवेश न हो जाये, ऐसा**

अगर हम करेंगे तो हम धर्म के सच्चे उपासक हैं। इसलिये धर्म में गलत को नहीं सही को स्वीकार करो। आज आप बेटे की बुरी आदत पर पर्दा डालेंगे, गलतियों का विकास आगे बढ़ जायेगा। आज एक बेटा, कल हजार बेटे इस गलती को स्वीकार करेंगे। इसलिये रागवश संसार के सभी बेटों का बुरा मत कर माँ।

जो देखने वाला है, वह मैं हूँ। देखने वाला आत्मा है तथा दिखने वाला पुद्गल है।

यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।

जानन् न दृश्यते रूपं, ततः केन ब्रवीम्यहम्।। स.तं.।।

जो मेरे द्वारा देखा जा रहा है वह मुझे जानता नहीं है, मैंने जिसको देखा है वह मुझे देखता नहीं। देखने वाले ने तुमको सच में कहाँ देखा? तुम्हारे पुद्गल तन को देखा है, पुद्गल मिट्टी को देखा है, मिट्टी की काया को देखा है। जो रूप देखा जाता है वह रूप मिट्टी का रूप है, पुद्गल है। मेरा रूप नहीं, मैं तो अरूप हूँ।

पुद्गल का परिणमन अनादि से चला आ रहा है और अनंतकाल तक चलेगा। इसे क्या देख रहे हो? यह शरीर नश्वर, नाशवान है। जो तुम्हारे द्वारा रूप देखा जा रहा है, वह अचेतन है। इस शरीर से भी मोह तोड़ो। शरीर से मोह तोड़कर योगी पुरुष आगे बढ़ता है। जिसे आप देख रहे हो, वह आपको जानता नहीं है। जो जानता है वह तुम्हें दिखाई नहीं देता है। जो तुझे दिखता है वह तुझे जानता नहीं है। जो तुझे जानता है वह तुझे दिखाई देता नहीं है। जिससे मैं बोलना चाहता हूँ, वह दिखाई नहीं देता है जो दिखाई देता है वह मुझे जानता नहीं। जो मुझे नहीं जानता, मैं उससे कैसे बोलूँ? हे ज्ञानी! एक बार तो इस भेद विज्ञान में प्रवेश कर तुझे स्व–पर का ज्ञान हो जायेगा।

कोऽहं? सोऽहं, जो चेदा सोऽहं।

जो णादा सोऽहं, जो दट्ठा सोऽहं।।

ज्ञानी पुरुषो! समयसार के सूत्र हैं। कुंदकुंद आचार्य की देशना है। इसे पचाना बहुत कठिन है ये देशना हर किसी से नहीं पचाई जाती है। सूर्य की कठिन किरणें ही तो कमल को खिलाती हैं। यदि मेरे कठोर प्रवचन भी होंगे तब भी उनके माध्यम से तुम्हारा कल्याण ही होगा। जिनसूत्र उपकार ही करेंगे। जब हम अपनी वस्तु का प्रयोग नहीं करते हैं तो कोई और उस वस्तु को प्रयोग करेगा। यह खुला आकाश है यदि तुम पतंग उड़ाओगे तो ठीक है, नहीं तो दूसरा कोई भी पतंग उड़ायेगा। रास्ता है

वाहन तुम नहीं चलाते हो, तो दूसरा चलायेगा। शास्त्र एक है, अगर अपनी निधि का स्वयं उपयोग नहीं करते हो तो कोई दूसरा उसका उपयोग करेगा।

आप जान जाओ कि सोऽहं नया शब्द नहीं है, नया मंत्र नहीं है, आज पैंतालीस मिनिट तक मात्र सोऽहं शब्द पर ध्यान करते हैं रविशंकर जी। इसका उन्होंने उपयोग किया है और अनेकों रोगों का इलाज कर रहे हैं। जिस काव्य के लिये, जिस मंत्र के लिये, भक्तामर स्तोत्र में पहले लिख दिया गया है–

अरसमरूवमगंधं, अवत्तं चेदणागुण समिद्दं।
जाण अलिंग्गहणं, जीवमणिदिट्ट संठाणं।।
असरीरा अविणासा, अणिदिंया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसदि णेया।। स.मा.।।

कुंदकुंद भगवान के समयसार को आपने घोट–घोट कर ली लिया है और आप कहते हैं विद्या घोट कर नहीं पिलाई जाती है और न ही घोटकर पी जाती है। और इस स्तोत्र में आपने सारे शास्त्रों का अध्ययन निचोड़ कर रख दिया है। जिस तरह वैद्य जब औषधि बनाता है, तो उसे बहुत से वृक्षों की जानकारी होती है। जानकारी होना आवश्यक भी होता है। तभी तो एक गोली में सौ वृक्ष का सार रख देता है। उसी तरह इस ग्रन्थ में आपने हजारों ग्रन्थों का सार उठाकर रख दिया है। इसे जानो और पहिचानो आत्मस्वरूप को, इस शास्त्र में मैं कहाँ हूँ?

मैं शरीर रहित हूँ, तुमने शरीर को पकड़ा है, जकड़ा है, सांकलों से शरीर बंधा है लेकिन मैं कहता हूँ यह शरीर मेरा ही नहीं है। आपने शरीर को बांधकर रखा है, आत्मा को नहीं।

अहो ज्ञानी! यह शरीर ही मेरा नहीं है अब किसको बांधेगा तू? मैं अविनाशी हूँ। तुम क्या सोचते हो? जेल में मुझे भोजन नहीं मिलेगा तो मेरा विनाश हो जायेगा। मैं अविनाशी हूँ। मेरा विनाश होने वाला नहीं है।

पानी न मिलने पर इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती है। इन्द्रियाँ तन की हैं, चेतन आत्मा की नहीं। मैं निर्मल हूँ, निर्बल नहीं। अनंत बल वाला हूँ। मैं अशुद्ध आत्मा नहीं हूँ। मैं विशुद्ध आत्मा हूँ। जैसे लोक के अग्र भाग पर सिद्ध भगवान बैठे हैं। वैसे ही इस जेल में आचार्य मानतुंग स्वामी विराजमान हैं। कौन–सी जेल में, आचार्य मानतुंग स्वामी बाहर की जेल में विराजमान हैं, भीतर की जेल में सिद्ध भगवान विराजमान हैं।

भिण्ड में विग्रहसागरजी की समाधि चल रही थी, उनका शरीर इतना कमजोर हो गया कि उन्हें उठाने पर चमड़ी हाथ में आ गई। गुरुदेव ने पूछा– महाराजश्री! क्या हो गया? महाराजश्री बोले– जेल की दीवारें टूटने लगी हैं। उन्होंने यह नहीं कहा कि उस व्यक्ति ने उन्हें गलत तरीके से उठाया है। कोई उठाने वाला नहीं, कोई सम्भालने वाला नहीं, यह भी नहीं बोला। ऐसी होती है– समता। यह कहलाता है साधुओं की संगति का फल, यह है सोऽहं का सच्चा पाठ।

अंदर का बोध जागृत होने पर शक्तियाँ प्रकट हो जाती है। तत्त्व बुद्धि से उसे जब अपने अज्ञान, मोह का बोध होता है तो वह यह जान जाता है कि वह कौन है? उसके आत्मबल के आगे संसार की समस्त शक्तियाँ पराजित हो जाती हैं। कर्म बड़ा बलवान् नहीं है। अनंतानंत जीव इस बात को सिद्ध कर, सिद्ध हो चुके हैं कि धर्म बड़ा बलवान है।

मैं सोहन नहीं, मैं सोऽहं हूँ। निश्चय से तो मैं आप जैसा ही हूँ। लेकिन व्यवहार में आपकी भक्ति के वश आपका भक्त हूँ। मैं राग–द्वेष के वश नहीं आया, किसी के भेजने बुलाने से नहीं आया हूँ। मैं प्रवचन में आपसे भी कहता हूँ कि किसी के कहने–सुनने से, भेजने–बुलाने से, आप मेरे पास मत आना, जिस क्षण दिगम्बर मुनि के प्रति भक्ति जागे उसी क्षण मेरे पास आना। अगर आप भेजने और बुलाने से आओगे। यदि आदर न पाओगे, तो तुम्हें खेद होगा, तुम उस आनंद को नहीं पा पाओगे। प्रभु के द्वार पर भेजने–बुलाने से मत जाना जब भक्ति जागे तब जाना। संघ देख के दीक्षा मत लेना, समाज देखकर दीक्षा मत लेना, जब भीतर में वैराग्य जाग जाये तब दीक्षा लेना। संघ में वैराग्य रहित बहुत सारे शिष्य की अपेक्षा एक वैराग्यवान शिष्य अच्छा है। अन्दर में जब वैराग्य आयेगा तो शिष्य स्वयं कहेगा– गुरुदेव दीक्षा दे दीजिये। यदि सुप्त वैराग्य हो तो सर्वप्रथम वैराग्य जगाओ, फिर दीक्षा लो।

अगर आपके अंदर भक्ति है तो तुम्हें हर राह पर आनंद तथा अच्छा मार्ग मिलेगा।

भक्तिरेव शक्तिः।

भक्ति ही शक्ति है।।

कहीं न कहीं किसी विशिष्ट जीव का पुण्य होता है, वह खींच के ले आता है। तीर्थंकर जन्म लेते हैं, न जाने कौन–से जीव का पुण्य योग है? यदि अनंतवीर्य केवलज्ञानी एक दिन पहले आ जाते तो राम और रावण का युद्ध न होता। महापुरुषों का सान्निध्य पुण्य का उदय होने पर प्राप्त होता है।

कोयल यह सोचकर नहीं कुहुकती है कि उसे कौन सुनेगा? चिड़ियाँ यह सोचकर चुप नहीं हो जाती कि कोयल उससे अच्छा गाती है। वह आनंद मुग्ध है, ब्रह्म मुहूर्त की बेला में प्रातः चार बजे आम्र मंजरी पर कोयल कुहुकना प्रारंभ कर देती है।

शाक्ति नहीं देखी जाती, भक्ति देखी जाती है। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ शक्ति अपने–आप चली आती है। अंजना के गर्भ में एक पुत्र पल रहा है। बसंतमाला कहती है–अंजना! इस जंगल में बेटे की रक्षा कैसे करेंगे? तब अंजना कहती है– चिंता मत करो। **वह भी तो अपने विधि का विधान साथ लाया है।**

आनंदस्रोत बह रहा, मन क्यों उदास है?
अचरज है जल में रहके भी, मछली को प्यास है।।

यह आनंद का स्रोत बह रहा है। फिर भी यदि हम ज्ञान न ले पाये तो उदास ही उदास बनें रहेंगे। आत्मा में जितनी शक्तियाँ छुपी पड़ी हैं वह सम्यक् पुरुषार्थ से समय पाकर धीरे–धीरे प्रकट होने लगती है। हिरण के बच्चे के पीछे शेर दौड़ कर आ रहा है, और वह झपटकर उसे ले जाता है, अगर हिरणी उस समय विचार करे कि क्या होगा? जो होगा सो देखा जायेगा, वह यह भी नहीं सोचती बच्चा कैसे बचाऊँ? वह सीधी बच्चे को छुड़ाने के लिये पहुँच जाती है। यदि उस समय विचार करने लग जाये तो उस बच्चे को खोना ही पड़ता। उसी तरह भक्ति के लिये दौड़ पड़ते हैं। पापों से बचने के लिये गुरु भक्ति में भक्त दौड़ पड़ते हैं। विषय कषाय रूपी शेर मेरे शुभ भाव रूपी बेटे को खाने के लिये आ रहा है तो मेरी आत्मा अपने शुभभाव रूपी बेटे की उससे रक्षा कर लेती है। और शुभभाव रूपी बेटे की रक्षा हो जाती है। शुभभाव की रक्षा करना मेरा धर्म है। पाप कर्म का उदय जिस समय हो उस समय शुभभाव की रक्षा कैसे करोगे? **सम्यग्दृष्टि संयत आत्मा हर तरह से शुभभाव की रक्षा करना जानती है, जैसे माँ बेटे की रक्षा करना जानती है।**

*****

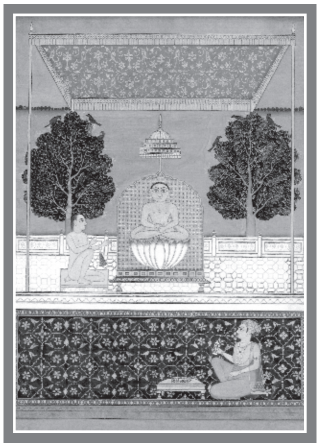

स्तुति में भक्ति ही कारण

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम
त्वद्भक्ति रेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतुः।।6।।

अन्वयार्थ :

अल्पश्रुतं	- अल्प ज्ञान वाला	श्रुतवताम्	- विद्वानों की
परिहास धाम	- हँसी का पात्र मैं	माम्	- मुझको
त्वद् भक्तिः	- अपकी भक्ति	एव	- ही
बलात्	- बलपूर्वक	मुखरी	- वाचाल
कुरुते	- कर रही है	कोकिलः	- कोयल
किल	- निश्चय से	मधौ	- वसन्त ऋतु में
मधुरम्	- मीठा	विरौति	- कूकती है
तत् च	- उसमें	आम्र	- आम की
चारु	- सुन्दर	कलिका	- मंजरी अथवा बौर
निकर	- समूह ही	एक	- मात्र
हेतुः	- कारण है।		

भावार्थ :

हे जिनेन्द्र! मैं अल्पज्ञानी विद्वानों के द्वारा अभी हँसी का पात्र बनूँगा, फिर भी आपकी भक्ति मुझे बाचाल कर रही है, जैसे बसंत ऋतु में आम्रमंजरी कोयल को कुहुकने के लिए स्वयं प्रेरित करती है।

सरस्वती विद्या प्रसारक

भावानुवाद

अभी हँसी का पात्र बनूँगा, मैं विद्वानों से।
भक्ति आपकी बुला रही है, हम अंजानों से।।
कोयल कूँज रही क्यों वन में, हाँ वसंत आया।
अरे आम्र की सुन्दर कलिका, ने मन उमड़ाया।।6।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोठ्ठबुद्धीणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थः थः थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं याचितार्थ प्रतिपादनशक्तिसहिताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

स्व–अल्पज्ञता प्रकाशन

अल्प–श्रुतं श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद्–भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र–चारु–कलिका–निकरैक–हेतुः।।6।।

भावार्थ– आचार्यश्री स्तुति रचना का कारण प्रकट करते हुये उसमें अपने कर्तृत्वपने का निषेध करते हैं। वे कहते हैं कि हे आदिनाथ भगवान! मैं अल्पज्ञ हूँ, शास्त्रों का विशेष जानकार नहीं हूँ तथापि स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ। ऐसा करने से निश्चय ही मैं विद्वानों की हँसी का पात्र बनूँगा। मुझमें आपके गुणगान करने की शक्ति तो है नहीं, परन्तु भक्ति अवश्य ही बलवती है जो कि मुझे जबरन स्तुति करने के लिये वाचाल कर रही है।

जैसे कि कोयल में यदि स्वतः बोलने की शक्ति होती तो वह बसन्त ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में भी बोलती हुई सुनाई देती, परन्तु वह तो तभी मीठी वाणी बोलती है, जब कि बसन्त ऋतु में आम्रवृक्षों की मंजरियाँ लहलहा उठती है अर्थात् आमों के बौर ही उसके बोलने के प्रेरणा केन्द्र हैं। उसी भाँति आपकी गुण–मंजरी ही एक मात्र मुझ अल्पज्ञ की स्तुति का प्रेरणा केन्द्र बनी हुई है।

प्रिय आत्मन्!

जिनेन्द्र भक्ति की पावन मंदाकिनी में अवगाहन करते हुये चेतना के चैतन्य प्रदशों को निर्मल, विमल उज्ज्वल बनाते हुये भक्तामर स्तोत्र के छठे काव्य में प्रवेश पा रहे हैं। जीव को जब तक केवल ज्ञान नहीं होता है, तब तक औदयिक भाव की अपेक्षा जीव अज्ञानी है। लेकिन चौथे गुणस्थान में सम्यक् ज्ञान हो जाता है, इस क्षायोपशमिक भाव की अपेक्षा चौथे गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्ज्ञानी है। ज्ञान गुण की अपेक्षा संसार के सभी जीव ज्ञानी हैं। क्योंकि ज्ञान तो प्रत्येक जीव में पाया जाता है। ज्ञानगुण की अपेक्षा प्रत्येक जीव ज्ञानी है। यहाँ पर आचार्य मानतुंग स्वामी कहना चाह रहे हैं कि मैं अल्पज्ञानी हूँ। इससे ज्ञात होता है इतने महान् आचार्य जो एक मुहूर्त में इतने महान् स्तोत्र की रचना कर दें, जेल में एक रात ही तो रहे हैं और सुबह देखा तो ताले खुल जाते हैं, बाहर बैठे मिले। कल्पना कीजिये– जो भक्तिवान पुरुष, ज्ञानवान पुरुष एक रात्रि में इतने महान स्तोत्र की

रचना कर सकता है वह अपने लिये क्या नहीं कह सकता है? मैं अल्पज्ञानी हूँ, सत्य है क्योंकि महापुरुष अपने ज्ञान को गुप्त रखते हैं।

लद्धूण णिहि एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।

तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।। 157।। नि.सा.।।

जैसे कोई किसान निधि को प्राप्त कर लेता है तो वह उस निधि को गुप्त रूप से अपने घर ले जाता है और धीरे–धीरे उस धन का समय पर उपयोग करता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष जीवन भर ज्ञान पाता है उस ज्ञान को अपने आत्मा के कक्ष में रख लेता है। उसका प्रयोग समय–समय पर करते हैं। कल महावीर प्रसाद जी बोले ज्ञान बांटना चाहिये कि नहीं? मैंने कहा– यहाँ आचार्य कुन्द–कुन्द स्वामी ने कहा है कि ज्ञान निधि है, उसका पहले स्वयं उपयोग करो। **मतिज्ञान स्वार्थज्ञान, श्रुतज्ञान स्वार्थ ज्ञान है। अवधिज्ञान स्वार्थ ज्ञान है, मनः पर्यय ज्ञान, स्वार्थज्ञान है, केवल ज्ञान परम स्वार्थ ज्ञान है। श्रुत ज्ञान ही मात्र एक ऐसा ज्ञान है जो वचनात्मक है। मतिज्ञान से जानता हूँ, श्रुतज्ञान से कहता हूँ। श्रुतज्ञान परार्थज्ञान भी है।**

कारणानुसारी कार्यम्।

कारण के अनुसार कार्य होता है हमारी दृष्टि कार्य पर जा रही है पर कारण पर नहीं जा रही है। आचार्य मानतुंग स्वामी कहते हैं–

कारण–कार्यविधानम्।

आप कार्य शुद्धता और कारण की शुद्धता भी जानते हैं। वस्तु स्वतंत्रता के सिद्धानत मंत्र को आचार्य मानतुंग स्वामी जानते हैं। परिस्थिति के अनुसार वह मनःस्थिति नहीं बनाना चाहते हैं। अधिकांशतः जीव परिस्थितियों के बीच में मनःस्थिति बदल लेते हैं।।

प्रिय आत्मन्!

कोयल दस माह मौन रहती है, कब कुहुकती है? जब आम्र वृक्ष पर बौर आता है तब कोयल कुहुकती है। हे जिनेन्द्र देव ! आपकी भक्ति ही मुझे वाचाल कर रही है, प्रेरित कर रही है,

कह रही है। तुम आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं। अन्यथा मेरे पास तो इतना ज्ञान ही नहीं था, कि मैं आपकी स्तुति रचता, मैं आपका स्तोत्र रचता।

प्रिय श्रोताओ!

हम उस दृश्य के अन्दर चलें जहाँ आचार्य मानतुंग स्वामी जेल के अन्दर है, उस समय की स्थिति में पहुँचे। काश! हम और आप क्या ऐसा कह सकते हैं? क्या ऐसा कर सकेंगे? आचार्य मानतुंग स्वामी ने राजा को दोषी नहीं ठहराया,प्रजा को दोषी नहीं ठहराया है, किसी को दोष देने की आवश्यकता नहीं है। अपने को खोजने की आवश्यकता है। उपादान को बिगाड़ना हो तो दूसरे के दोष देखो। उपादान को संभालना हो तो गुण देखो, दोष नहीं। किसी को अभिशाप और संताप देने की बात नहीं सोचो। मात्र कल्याण की भावना और आत्मोन्नति का लक्ष्य लेकर आगे बढ़े चलो।

दृष्टि वहाँ से फेर ली, उपयोग वहाँ से बदल लिया। अनुभव ही नहीं है कि मैं जेल में हूँ। ये लक्ष्य में ही नहीं है, कि मैं जेल में हूँ। एक ही लक्ष्य है मैं किसी परिस्थिति के वश होकर के कुछ काम नहीं करता। भक्ति के वश होकर भक्तामर स्तोत्र रचता हूँ। मैं परिस्थिति से घबराकर यह नहीं कर रहा हूँ। मैं तो भक्ति के वश होकर ही आपकी भक्ति कर रहा हूँ। मुझे आपकी भक्ति प्रेरणा दे रही है। भक्ति मुझे ढकेल रही है कि आगे बढ़ो भगवान की भक्ति करो, देखो! जैसे आप अपने बच्चे को स्कूल भेजने के लिये प्रेरणा देते हैं। मेरे भीतर जो भक्ति पैदा हुई है वह आपके प्रति गुणों में अनुराग वश पैदा हुई है। **वह भक्ति कहती है कि कुछ तो लिखो,कुछ तो बोलो जो भी बोलोगे, जो भी लिखोगे भक्ति बनता जायेगा।**

सत्य उजागर हो गया, कोई परिस्थिति नहीं बुलवा रही है। कोई यश की कामना नहीं है। हृदय में भाव है। मुनिराज एक बार मौन ले लेते हैं, तब सुमेरू पर्वत भी काँप जाये पर मुनिराज का आसन कम्पित नहीं होता है। कैसी भी भीषण उपसर्ग हो वह चलायमान नहीं होते हैं। लेकिन भीतर में जो भक्ति उमड़ रही है वह भक्ति बोलने की शक्ति प्रदान कर रही है।

उपादान कारण क्या है? उपादान कारण अंतरंग भक्ति है। निमित्त कारण सामने नहीं है। भगवान सामने नहीं हैं। उसे भगवान की आवश्यकता ही क्या है? जिसके भीतर भगवान बसे हैं। आप जिसके भीतर हृदय में बैठे हैं उसे सामने देखने की आवश्यकता ही क्या है? उसे आवश्यकता नहीं पड़ती बाहर

देखने की, देखता अवश्य ही है। जैसे एक चित्रकार अंधेरी रात में जेल के अंदर बैठा है और अपनी प्यारी स्त्री का चित्र बना लेता है या एक पुरुष अंधेरी रात में जेल में होते हुये भी अपनी स्त्री का ध्यान कर लेता है। जिसके मन में जो समाया होता है आँखें बंद करने पर भी उसे वही सामने दिखाई देता है, आँखों के समक्ष उसकी तस्वीर झलक आयेगी, उसका रूप झलक आयेगा, उसका रंग झलक आयेगा, उसका वर्ण व्यवहार झलक आयेगा। अंतरंग कारण मेरी भक्ति है, उपादान कारण भक्ति है, उपादान सम्भालोगे तो कार्य सम्भला जायेगा।

प्रिय चैतन्य आत्माओ!

जैसे कारण मिलते हैं, कार्य वैसा होता है। लेकिन उपादान कारण प्रमुख होता है। कारण दो प्रकार के होते हैं–

1. **निमित्त कारण–** बाह्य साधन सामग्री जो कार्य में सहायक हो।

2. **उपादान कारण–** वस्तु या व्यक्ति की निजी क्षमता जो कार्य रूप परिणत हो।

निमित्त कारण के मिलने पर भी उपादान कारण यदि न मिले तो कार्य नहीं होता है। उपादान कारण, उपस्थिति रहने पर भी निमित्त कारण न मिले तो भी कार्य नहीं होता है।

कार्य की निष्पत्ति में कारण की उपस्थिति अनिवार्य होती है, कारण पूर्वक कार्य होता है। जिसने तैरना सीखा है वह कभी न कभी जल में उतरा होगा, जल में उतरे बिना तैरना सीखना कठिन है क्योंकि कारण ही अनुकूल नहीं मिलेंगे तो कार्य कैसे होगा? कारण आज यहाँ पर साधु है। इसलिये आप यहाँ पर विराजे हैं। साधुओं की उपस्थिति न होती, मंदिर न होता, भगवान न होते तो आप क्यों आते? यहाँ भगवान विराजमान हैं। इसलिये आप मंदिर आते हैं। यह निमित्त कारण है। आप मंदिर इसलिये जा रहे हैं कि वहाँ भगवान विराजमान है। भगवान का निमित्त मिलने पर आप मंदिर गये और उपादान कारण भीतर की भक्ति है। कुछ लोग बोलते हैं, शहर के प्रत्येक व्यक्ति के पास गाड़ी है, आने–जाने की सुविधायें हैं। यह सब होने के बाद भी यह तो बहिरंग निमित्त है। अंतरंग भक्ति होने पर ही आप बहिरंग साधनों का प्रयोग कर पायेंगे, अन्यथा आपकी गाड़ी बाहर बाजार, होटलों पर तो जायेगी लेकिन जिन मंदिर तक नहीं ला पाओगे।

जिसके पास गाड़ी नहीं है, लेकिन भक्ति है तो वह बरसात के दिनों में भी चला आ रहा है, साधुओं की सेवा में आहार का सामान लिये। भक्ति में उसे बरसात नहीं साधु की चर्या नजर आ रही है, भक्ति ऐसी ही होती है। तीर्थक्षेत्र श्रेयांसगिरि पर परम पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज का चातुर्मास हुआ। एक माता ऐसी भी थी जिसके पास वाहन नहीं था– साधन नहीं था। कभी–कभी जिनके पास कोई साधन नहीं होता लेकिन भक्ति के प्रभाव से वह उपस्थित हो जाता है, अगर अंतरंग में भक्ति है तो वहीं पहुँचोगे जहाँ नियम से भक्ति करने के साधन होंगे। आपके सामने गाड़ी है, लेकिन आप मंदिर नहीं आ पाओगे यदि आप में भक्ति भावना नहीं है। हम अपने आपको साधनों के अधीन न बनायें, आप अपने को भक्ति के आश्रित बनाओ।

कारणकार्यविधानम्।

हम अपनी दृष्टि साधनों पर नहीं, साधना और साध्य पर डालें। जो आज उन्नति के शिखर पर हैं उन आचार्यों को देखें कि उनकी भक्ति कितनी रही है? और उसके बाद उन आचार्यों के प्रति हमारी भक्ति कितनी है। पहले अंतरंग कारण जुटाओ, बहिरंग कारण मिल जायेगा या बन जायेगा। सम्यक्दर्शन का अंतरंग कारण दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है। बहिरंग कारण देव, शास्त्र, गुरु के दर्शन, तीर्थवंदना, शास्त्र श्रवण आदि बहुत से हो सकते हैं। जिनेन्द्र भक्ति ही अंतरंग कारण है। इस भक्तामर स्तोत्र के रचने में , बिना अंतरंग कारण के बहिरंग में कार्य होता नहीं है। जैसे– बसंत ऋतु में आम्र की कलिका कोयल को कूकने के लिये मजबूर करती है, उसी तरह भक्त की भक्ति उसे साधु के पास आने को मजबूर करती है। चाहे शरीर ठीक हो या न हो, अवस्था चाहे कैसी ही क्यों न हो? वह साधु के पास अवश्य आयेगा।

जो ज्ञानी पुरुष होते हैं वह अवस्था और व्यवस्था को नहीं देखते हैं। वे भीतर की भक्ति को देखते हैं। अंतरंग में कौन बोल रहा है?कौन बल,शक्ति,हिम्मत, ताकत, क्षमता दे रहा? बस आपकी भक्ति ही मुझको साहस दे रही है। हे प्रभु? मैं तो शक्तिहीन, क्षमताहीन, बलहीन हूँ। आपकी भक्ति मुझे प्रेरणा दे रही है। और आगे बढ़ा रही है। हम जैसे कारण जुटायेंगे, कार्य वैसा होगा। धर्म के कारण धर्म से जोड़ते हैं। परिवार को धार्मिक बनाने के लिये धार्मिक कारण जुटाओ तभी परिवार धार्मिक बनेगा। हमें इस तत्त्व को, इस कारण को भलीभांति जानने की आवश्यकता है। कारण कैसे मिलते हैं?

एक माँ की कोख से दो पुत्र जन्म लेते हैं। एक ब्रह्मण के यहाँ पलता है, एक बेटा शूद्र के यहाँ पलता है। जो शूद्र के यहाँ पलता है, उसमें शूद्र जाति के संस्कार आते हैं। जो ब्राह्मण के घर पलता है बाल्यकाल से ही उसमें उसी जाति के संस्कार आते हैं और वह स्वस्ति कहना सीख जाता है। दोनों पुत्रों को एक माँ ने ही जन्म दिया, संस्कार जैसे मिले वह वैसे हो गये। कारण के मिलने पर कार्य होता है। दो तोते एक साथ एक दुकान से बिके। एक राजा के घर में पला, एक चोर के घर में पला और संस्कार दोनों के संगति अनुसार ही होंगे।

आचार्य कहते हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल का प्रभाव होता है। ये तीन प्रभाव डालने के लिये साधन होते हैं, भाव साध्य होते हैं, भावों की उत्पत्ति बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल के नहीं हो सकती है। द्रव्य, क्षेत्र, काल ये तीन साधन हैं और भाव साध्य हैं। हमारे लिये चाहिये कि हम अपने भावों को उत्तम बनायें, जब तक भाव उत्तम नहीं होंगे। तब तक द्रव्य, क्षेत्र, काल अपना प्रभाव हमारे भावों पर नहीं डाल सकते हैं। इसलिये प्रिय आत्माओ! **भावों को उत्तम बनाओ आपका भव उत्तम बनेगा।** भव के उत्तम होने से पाप नहीं होगा, परणति अच्छी रहेगी तो सुगति होगी।

आप रोज आत्मा के अंदर जायें और देखें आपके भाव कितने पवित्र या अपवित्र हैं? अपवित्र भावों को त्यागो और आत्मा का कल्याण करो।

*****

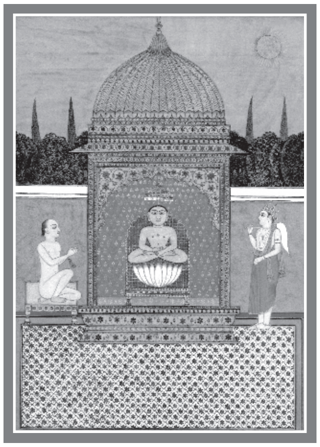

पापविनाशक जिनवर स्तुति

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नील-मशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम्।।7।।

अन्वयार्थ :

त्वत्	- आपकी	संस्तवेन	- स्तुति करने से
शरीरभाजाम्	- संसारी प्राणियों के	भवसन्तति	- अनेक जन्मों में
सन्निबद्धम्	- बंधे हुए	पापम्	- पाप कर्म
आक्रान्त लोकम्	- समस्त लोक में फैले हुए	अलि नीलम्	- भंवरे के समान काले
सुर्यांशु	- सूर्य की किरणों से	भिन्नम्	- छिन्न-भिन्न
शार्वरम्	- रात्रि में होने वाले	अशेषम्	- सम्पूर्ण
अन्धकारम् इव	- अंधकार की तरह	क्षणात्	- क्षणभर में
आशु	- शीघ्र ही	क्षयम्	- विनाश को
उपैति	- प्राप्त हो जाता है।		

भावार्थ :

हे जिनेन्द्र देव! भव-भव में बाँधे हुए पाप आपकी स्तुति करने से क्षणमात्र में वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे लोक में फैला हुआ सघन अंधकार भी सूर्य की एक किरण से नष्ट हो जाता है।

सर्व क्षुद्रोपद्रव निवारक

भावानुवाद

नाथ! आपकी संस्तुति से ही, हम जग जीवों के।
सघन कर्म के बन्ध नशेंगे, बाँधे भव–भव के।।
विश्व व्याप्त भौरें सा काला, घोर अँधेरा ज्यों।
सूर्य किरण से छिन्न–भिन्न हो, हट जाता है त्यों ।।7।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसकंटक्षुद्रोपद्रव कष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं सकलपापफलकुष्टनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

जिन स्तवन की महिमा

त्वत्संस्तवेन भव–सन्तति–सन्निबद्ध,
पापं क्षणात्क्षय–मुपैति शरीरभाजाम्।।
आक्रान्त–लोक–मलि–नील–मशेष–माशु,
सूर्यांश–भिन्न–मिव शार्वर–मन्धकारम्।।7।।

भावार्थ– जिस प्रकार समस्त संसार को आच्छादित करने वाला भौंरे के समान काला-नीला सघन अन्धकार सूर्य की किरण निकलते ही छिन्न–भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार हे आदिदेव! आपकी भक्ति में लीन होने वाले प्राणियों के जन्म-जन्मान्तरों के उपार्जित एवं बद्धपापकर्म तत्काल ही समूल नष्ट हो जाते हैं अर्थात् श्री जिनराज के चरणकमलों का स्मरण अनंतानंत संसार की परम्परा को नाश करने वाला है। भगवन्! आप मुझे अपनी शरण में ले लो।

भक्तामर भक्ति मंदाकिनी मन में आनंद भरती हुई चित्त को प्रसन्नता प्रदान कर रही है। भक्तामर का यह सातवाँ काव्य सात तत्त्व का ज्ञान प्रदान कर सप्तम परम स्थान मोक्ष सुख को परम्परा से प्रदान करेगा। आत्मीय प्रदेशों पर प्राण प्रतिष्ठित मेरे इष्टदेव, वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी देव आदि ब्रह्मा, आदि प्रभु की आराधना ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की आराधना है।

प्रिय आत्मन्!

जीवो अणाइणिहणो।।

जीव अनादिनिधन है। आचार्यश्री नेमिचन्द्र स्वामी कर्मकाण्ड शास्त्र में लिखते हैं–

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइ संबंधो।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं।।2।।

प्रकृति, शील, स्वभाव ये पर्यायवाची हैं। इनका जीव और शरीर के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध हैं। जैसे स्वर्ण पाषाण में किट्टिकालिमा स्वतः सिद्ध है, उसी तरह जीव के साथ कर्म स्वतः अनादिसिद्ध है। जैसे अग्नि के ताप से स्वर्ण शुद्धि होती है, वैसे ही रत्नत्रय साधना से आत्मशुद्धि होती है।

प्रत्येक देहधारी संसारी जीव मिथ्यात्व, अविरिति, प्रमाद, कषाय, योग इन प्रत्ययों के द्वारा

कर्म और नोकर्म वर्गणाओं को वैसे ही ग्रहण करता है, जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहपिण्ड पानी को सभी ओर से ग्रहण कर लेता है। सिद्ध जीव राशि के अनंतवें भाग प्रमाण और अभव्य जीव राशि के अनंतगुणा कर्मों को यह जीव प्रति समय बांधता है।

कर्मकृत मोहवृद्धि से संसार वृद्धि होती जाती है। इसमें जीव का अज्ञान ही संसार वर्द्धन का कारण है। भव–भव में इस आत्मा ने पापों का अर्जन किया। मनुष्य भव तो पापों के विसर्जन के लिये मिला। यदि इसमें भी कर्मार्जन किया तो कर्जमुक्त कहाँ होगा? एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक मात्र पापार्जन ही तो किया। पुण्यार्जन, धर्मार्जन का अवसर तो आपके लिये सर्वप्रथम इस दुर्लभ मनुष्य पर्याय में आज ही मिला है। पापार्जन का मुख्य कारण आर्त–रौद्र ध्यान की परिणति है। क्रिया दृष्टिगोचर नहीं होती, किन्तु पाप अन्तःकरण में अनवरत चलता रहता है। दिखता कुछ है, होता कुछ है। क्रिया पुण्य की दिखाकर भी पाप कमाया जा सकता है, पाप क्रिया तो पाप है ही।

संक्लेश परिणाम करना ही बुरा कार्य करना है। पापास्रव और पाप बंध का मूल कारण संक्लेश है। पुण्यवृद्धि का मूल कारण विशुद्धि है।

अन्येक्षेत्रे कृतं पापं, धर्मक्षेत्रे विनश्यति।
धर्मक्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति।।

अन्य क्षेत्र में हुआ पाप धर्मक्षेत्र में नष्ट हो जाता है। किन्तु जो धर्म क्षेत्र में पाप किया जाता है वह वज्र लेप की तरह कठोर और स्थायी होता है। अतः धर्मक्षेत्र में बुरा कर्म मत करना। संसार में कहीं पाप करता तो प्रभु के चरणों में आकर धो लेता। यदि मैंने प्रभुशरण, जिनालय, तीर्थयात्रा में ही पाप किये, तो कहाँ धुलेंगे?

प्रिय आत्मन्!

हम जो यात्रा कर चुके हैं, अनंत भव की यात्रा, उसमें मात्र मैंने कर्ज ही कर्ज लिया है। कर्मों का इतना ज्यादा कर्ज हमारे साथ है कि जब तक वह कर्ज नहीं चुकेगा,तब तक सुखी नहीं होंगे।

प्रिय आत्मन्!

क्रोध का कर्ज क्षमा को गिरवी रखे बिना नहीं मिलता है, मान का कर्ज मृदुता को गिरवी रखे बिना नहीं मिलता है, माया का कर्ज सरलता को गिरवी रखे बिना नहीं मिलता है लोभ का कर्ज संतोष को

गिरवी रखे बिना नहीं मिलता है। पाप का कर्ज पुण्य को गिरवी रखे बिना नहीं मिलता है। संसार का कर्ज मोक्ष को गिरवी रखने के बिना नहीं मिलता है।

प्रिय आत्मन्!

हमारे पास इतने पाप कर्मों का कर्ज है, एक समय में जीव सत्तर कोड़ा– कोड़ी सागर तक कर्म बांध लेता है। दर्शन मोहनीय कर्म का बंध सत्तर कोड़ा–कोड़ी सागर तक इस जीव को हो जाता है। ऐसा मोहनीय कर्म जो बांध चुका है उसे कितने भव में नष्ट करेगा। आप कल्पना करेंगे कि वस्तुतः कितना बड़ा रहस्य है। कैसे भव–भव में कर्मों को बाँधकर के आया हूँ? बाँधने के लिये कोई भी स्थान हो सकता है, लेकिन छोड़ने के लिये तो मात्र एक जिनेन्द्र भगवान के चरण ही हैं। बांध तो किस भी प्रकार से आओ? लेकिन छोड़ने का तो एक ही उपाय है। बाँधने के लिये तो अज्ञान से भी बंध जाता है, मोह से भी बंध जाता है, छोड़ने को सम्यग्दर्शन चाहिये। बाँधने को तो चार गति में बाँधा जाता है। छोड़ने के लिये तो मनुष्य गति ही चाहिये। बाँधने को तो कषाय से बाँधा जाता है, छोड़ने के लिये भाव और चारित्र निष्कषाय चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

कर्मों की डोरियाँ तो कभी भी टूट जायेंगी लेकिन मोह की श्रृंखलायें मजबूत हैं। लोहे की सांकलें तो इस तन को बाँध पाती है, लेकिन कर्मों की सांकलों ने इस अदृश्य आत्मा को रोक रखा है। एक भी कर्म शेष रहता है तो जीव मोक्ष नहीं पहुँच सकता। यदि एक भी कर्म शेष रहता है, तो केवलज्ञान नहीं पा सकता और अघातिया कर्म शेष रहता है तो वह मोक्ष नहीं जा सकता है। मैंने जिन कर्मों को जोड़ा है वह मेरे आज का ही कर्म नहीं है, भव–भव के कर्म हैं, जन्म–जन्म के कर्म हैं। कर्म करने के लिये ज्ञान नहीं चाहिये। गुरु नहीं चाहिये, शास्त्र नहीं चाहिये, प्रभु नहीं चाहिये। कर्म करने के संस्कार तो अनादि से हैं जीव के। कोई भी पापशाला नहीं खुलती है, खुलती तो पाठशाला ही हैं। कोई पाप विद्यालय नहीं खोलता है, लेकिन पाप होता है।

प्रिय आत्मन्!

पंचकल्याणक तो कहीं एक जगह होता है लेकिन पंच पाप तो हर जगह, हर समय होते हैं। इस जीव ने पाँच महाव्रत आज तक धारण नहीं किये लेकिन पाँच पाप अनादि से करता आ रहा है इस जीव को समझाओ। चेतन आत्मा से पूछो– हे आत्मन! अब तक तू कहाँ रहा? क्या करता था? क्या

करता रहा? मैं निगोद में रहा हूँ। एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण करता रहा, संक्लेश के साथ किया या विशुद्धि के साथ। संक्लेश के साथ दो इन्द्रिय जीव का संक्लेशमयी जीवन, तीन इंद्रिय जीव का संक्लेशमयी जीवन, चार इंद्रिय जीव का संक्लेशमयी जीवन। कहूँ तो क्या कहूँ? असंज्ञी–संज्ञी जीव का संक्लेशमयी जीवन।

प्रिय आत्मन्!

जल के द्वारा ही कीचड़ तैयार होता है, बारिस हुई मिट्टी कीचड़ बन गई। आप रास्ते में चले पाँव में लग गया, घर में प्रवेश किया कीचड़ किससे धोया? जल से। कीचड़ उत्पन्न हुआ जल से। साफ हुआ जल से। मन से ही पाप पैदा होता है और मन से ही पाप धुलता है।

प्रिय आत्मन्!

मन यही है आज तक इस मन में स्तुति नहीं आयी, आज तक इस वचन ने स्तुति नहीं गायी, आज तक इस काय ने स्तुति नहीं की, यदि मेरे मन ने कभी जिनेन्द्र भगवान का गुणगान किया होता, स्तुति की होती, तो ये पाप झड़ गये होते, मिट गये होते, कट गये होते। लेकिन आज तक मैंने भगवान की पूजा नहीं की, भक्ति नहीं की। दर्शन करते–करते अनंतकाल नहीं बीता, भगवान की पूजा में काल नहीं बीता स्वाध्याय करने में काल नहीं बीता, गुरु संगति में काल नहीं बीता, भक्तामर स्तोत्र से यह जानना है कि मेरा जीवन कैसे बीता है? मैंने क्या कमाया? भक्तामर स्तोत्र कहता है– तुमने अनादि से पाप ही तो कमाया है, लेकिन चिंता मत करो। भूल पर पछताओ नहीं, उसको मिटाने का उपाय करो । जो गलती हो चुकी उसको दुहराओ मत, उसको मिटाने का उपाय करो। जो पापों का संचय मैंने कर रखा है वह मेरी अज्ञान दशा थी, वह मेरी मोह दशा थी, वह मेरी भूल थी, उस भूल को अब कैसे क्षमा करायें?

प्रिय आत्मन्!

श्रीपाल का पूर्व भव देखिये! कुम्हारों की बस्ती में रहता है। एक बार दिगम्बर मुनि संघ आया । मुनियों को चिड़ाने लगा– ये नंगे होते हैं, ये दरिद्र होते हैं, ये कुरूप होते हैं, अज्ञान में जीव कुछ भी कह दे। जीव कर्म करते–करते हँसता है, कर्म जब फल भोगने में आता है तो रोता है उसके सात सौ साथी थे सभी ने मुनियों की निंदा की। निंदा का परिणाम यह हुआ कि दूसरे भव में सब के सब कुष्ठ रोगी हो गये। पाप कहाँ से आया? पूर्व भव से बाँधकर आये थे। इस भव में कोई पाप नहीं किया था

श्रीपाल ने। लेकिन कर्म का उदय कब आ जाये? कब का बाँधा कब उदय में आ जाये? जो बीज तुमने जमीन में डाल दिया है वह बीज जब भी योग्य जल, वायु पायेगा वह पैदा हो जायेगा। जो कर्म मैंने कर लिया है वह उदय में आ सकता है। श्रीपाल सहित सात सौ साथियों को कुष्ठ रोग हो गया। सब मित्र हैं, कुष्ठ रोगी हैं। पूरा गाँव कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं। कल्पना करो कौन–सा रोग है? कुष्ठरोग। यह तो नाम है। है तो मात्र एक कर्म रोग, कर्म रोग के कारण वह दुःखी था। ऐसी स्थिति में पुण्य पाप साथ में चलता है। मैना के साथ परिणय हो गया। मैना ने उस समय कोई वैद्य का सहारा नहीं लिया। देने को था क्या? किसी औषधि का सहारा नहीं लिया क्योंकि मैना जानती थी।

विषापहारं मणिमौषधानि, मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्याय नामानि तवैवतानि।।

विषपहार

प्रिय आत्मन्!

जितने भी मणि, औषधि, रसायन मंत्र हैं। हे जिनेन्द्र! यह सब आपके पर्यायवाची हैं। इसलिये जो अन्य का आश्रय लेते हैं वे भ्रमित हैं उन्हें मात्र आपका सहारा लेना चाहिये, आपके नाम से बड़ी कोई औषधि नहीं है। आपके नाम से बड़ा कोई रसायन नहीं है। आपके नाम से बड़ा कुछ नहीं है इसलिये मैना तीर्थ यात्रा के लिये चल दी। मुनि का समागम हुआ। पहले मुनि निंदा करने से इतना बड़ा पाप कर लिया आज वही श्रीपाल देख रहा है कि मैना मुनि के पास जा रही है और मैना ने जाकर मुनि से उपाय पूछा। बेटी मैना! इन्होंने पूर्व भव में मुनियों की निंदा करने से ऐसा कर्म बांध रखा है। तुम सिद्धचक्र का पाठ करो और प्रतिदिन गंधोदक छिड़को कुष्ठ रोग दूर हो जायेगा।

सुन साधु वचन हरसे मैना, नहीं झूठ होय मुनि के बैना।।

प्रिय आत्मन्!

मुनि के वचन सुनते ही मैना को हर्ष उत्पन्न हो गया। मुनि महाराज के वचन झूठे नहीं होते हैं जरूर कुष्ठ रोग मिट जायेगा मैना ने सिद्धचक्र का पाठ किया। हे जिनेन्द्र देव! मैना ने आपका स्तवन किया। एक का नहीं सात सौ कुष्ठ रोगियों का कुष्ठ रोग दूर हो गया। भव–भव में जिन कर्मों को जोड़ रखा था, वे सब कर्म क्षय को प्राप्त हो गये।

प्रिय आत्मन्!

"कर्मणां विचित्रता गति:"

यह सब बड़ी विचित्र स्थिति है कौन–से जीव कहाँ से कर्मों को जोड़कर लाते हैं। दुर्गंधा का जीवन उठाकर देख लेना। पूर्वभव में लक्ष्मीमती की पर्याय में मुनि महाराज को देखकर पान की पींक कर देती है। ओहो! ऐसा घिनावना, क्या हुआ? तत्काल कुष्ठ रोग हो गया। राजा ने घर से निकाल दिया, तूने दिगम्बर मुनि का अनादर किया है। राजा ने कहाँ निकाला, पुण्य कर्म जब निकल जाता है तो सब निकाल देते हैं और जब पुण्य कर्म का उदय आता है तो सब तुझे आदर के साथ ले जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

जब पुण्य कर्म ही तेरा निकल गया तो तू कहाँ ठहरेगी? महलों से निकाल दिया, भटक रही है, आखिर माया करके दूसरी पर्यायों में कूकरी, शूकरी नाना प्रकार की अन्य पर्यायों में जन्म ले लेती है। और अनेक भवों के बाद दुर्गंधा की पर्याय में आयी। आसपास का सभी क्षेत्र दुर्गंध से भरा हुआ है जंगल में अचानक एक मुनि दिखाई दे गये। मुनि की करुणा दृष्टि। क्यों बेटी? जैसे ही उस दुर्गंधा ने मधुर वाणी सुनी आज मुझे इस संसार में इतना बूढ़ा व्यक्ति बेटी कह रहा है। आज मुझे इस संसार में पहला व्यक्ति मिला क्योंकि मेरे जन्म लेते ही माता–पिता चल बसे थे, मैं इतनी पापी थी कि मेरे पाप के कारण मेरे माता–पिता भी चल बसे, बेटी दुःखी मत हो। तूने पूर्व भव में जो कर्म किया है उसके कारण तू आज दुःखी है। किन्तु आज से जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करना प्रारंभ कर दे। एक व्रत करना प्रारंभ कर दे। तेरे सब कर्म टल जायेंगे। वह दुर्गंधा जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करती है। स्तुति के प्रभाव से दुर्गंधा के सारे पाप कर्म टल जाते हैं और उसका सर्व शरीर सुगंध रूप परिणत हो जाता है। कुष्ठ रोगी श्रीपाल कामदेव के समान सुंदर हो गया। दुर्गंधा–सुगंधा बन गई। वही आगे जाकर द्रोपदी की पर्याय को प्राप्त हो गई।

प्रिय आत्मन्!

किस जीव ने कब कर्म किये हैं? हमें स्वयं पता नहीं है। आज हम यहाँ बैठे हैं कल मेरी सत्ता में कौन–सा कर्म उदय में आ जाये? इसका मुझे कोई पता नहीं। तुम्हारे पास बाहर में कितना भी धन–वैभव बना रहे लेकिन भीतर में कौन–सा कर्म सत्ता में पड़ा है? इसका किसी को पता नहीं है कि कर्म क्या भोगने देगा? सुख के साधन आप जुटा सकते हैं लेकिन कर्म जैसा होगा, वैसा ही भोगने मिलेगा।

प्रिय आत्मन्!

पापों को टालना ही सबसे बड़ी साधना है। अपनी बुद्धि को सम्यक् बनाना है तो स्तुति करो। स्तुतियाँ बुद्धि को सम्यक् बना देती है, निर्मल बनाती है, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान देती हैं। स्तुति करने से सम्यक्चारित्र की वृद्धि होती है। निःशंकित अंग मिलता है और स्तुति करने से दर्शन विशुद्धि बढ़ती है।

प्रिय आत्मन्!

कहाँ कर्म करके आये? कहाँ जीवों ने कर्म बाँधे? अकृतपुण्य ने कहाँ कर्म बाँधा? मंदिर का निर्माल्य चुरा लेता था, मंदिर का निर्माल्य खा लेता था। दूसरे भव में दरिद्र हुआ, कुछ भी पास नहीं था लेकिन मुनियों पर आस्था थी उसकी। ज्यों ही मुनि महाराज आये,कहा–माँ! मुनिराज को आहार दो ना। माँ– बेटे! अपने पास क्या है? जो मुनि को आहार दें। न दूध है, न चावल है, हम क्या आहार दें? माँ! कुछ व्यवस्था बनाओ, अपने घर मुनि के आहार कभी क्यों नहीं होते? माँ बेटा से कहती है– बेटा! मैं कोशिश करूँगी। जिस दिन मुझे कहीं चावल मिल जायेगा, दूध मिल जायेगा, उस दिन मैं मुनिराज को आहार कराऊँगी। दूसरे दिन माँ कहीं मांग रही थी कि मुझे भोजन के लिये कुछ दे दो तो सेठानीजी ने मंदिर के चावल की डिब्बी खाली कर दी और वह चावल उसकी झोली में आ गये। आगे बढ़ी, सेठजी जा रहे हैं दूध का बर्तन लेकर और उनसे माँगा। सेठजी ने उसमें से थोड़ा–सा दूध दे दिया। लौट के आयी। माँ ने खीर बनाई। बेटा! आज मैं खीर बना रही हूँ। माँ! तुमने उस दिन कहा था कि जिस दिन कभी मुझे दूध चावल मिल जायेंगे मैं उस दिन मुनिराज को आहार कराऊँगी। बेटा! लेकिन पता तो नहीं है कि आज मुनिराज आयेंगे या नहीं। मुनिराज तो जंगल में रहते हैं, माँ फिर क्या किया जाये? माँ मैं तो यहीं बैठा हूँ। जब तक मुनिराज नहीं आयेंगे। तब तक मैं खीर नहीं खाऊँगा। मैं मुनिराज को पड़गा लूँगा। मुनिराज निकल रहे हैं, रास्ते से। बेटा दूर से देख रहा है, महाराज इस गली में आ जायें, इस गली में आ जायें और भावनाओं का आकर्षण ऐसा था कि उस बालक की भावना ने मुनिराज को अपनी गली में खींच लिया। जब मुनिराज पास में आये महाराज आपका आहार इसी घर में है। आपके आहार इसी घर में है। मेरी माँ ने आपके लिये खीर बनाई है, खीर बनाई है। ठहर जाओ महाराज! ठहर जाओ, ठहर जाओ महाराज! रुक जाओ ना! रुक जाओ न! मेरी माँ अभी आयेगी, तुम्हारे लिये खीर खिलायेगी, तुम्हारे लिये खीर खिलायेगी। महाराज की अपनी अलौकिक

चर्या होती है। अपने लोकाचार से महाराज क्या कहें? पडगाहन कोई कर नहीं रहा। कैसे रुक जायें? महाराज रुक जाओ न, तुम! नहीं रुकोगे तो मेरी माँ फिर कैसे खीर खायेगी, मैं भी खीर नहीं खाऊँगा। रुक जाओ ना,तुमको खीर खाने मिलेगी। रुक जाओ परन्तु महाराज आगे बढ़ने लगे। उस बालक ने मुनिराज के चरण पकड़ लिये। महाराजश्री मेरी माँ अभी आती है। आप थोड़ा रुक जाओ। अब बालक चरण पकड़े खड़ा है मुनिराज मुद्रा लिये खड़े हैं, बालक चरण पकड़े है कि मैं आगे नहीं जाने दूँगा। तुम तो रुक जाओ, माँ उधर से कलश लेकर चली आ रही है, देख रही है ये बेटा कैसा ढीठ है, महाराजश्री के चरण पकड़े है। माँ उधर से यो चली आ रही है और बोलती है। नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! महाराज तो खड़े ही थे और महाराज का पड़गाहन हो गया। पड़गाहन होते ही हर्ष हुआ जिस घर में कभी खाने को दाना न हो उस घर में दिगम्बर मुनिराज का पदार्पण हो जाये, जिस घर में कभी किसी व्यक्ति का भोजन न हुआ हो उस घर में महा अतिथि महा मुनिराज पधारें, जीवन की पहली दीवाली, जीवन का पहला रक्षाबंधन, जीवन की पहली वर्षगांठ, पहला त्यौहार नजर आ रहा है। दिगम्बर मुनि पधारे। अब तो एक कटोरी खीर है, खीर के तो तीन हिस्से करने हैं। माँ ने एक डिब्बी चावल की खीर बनाई है उसमें एक हिस्सा मुनिराज का, दूसरे बेटे का, तीसरा स्वयं का। मुनिराज का पड़गाहन कर उन्हें घर लाती हैं और आहार कराती है आहार में मुनिराज के हिस्से की खीर आहार में दे दी। माँ सोचती है मुनिराज के आहार कराने का अवसर पुनः मिला न मिला। इस बार अच्छे से आहार करा लूँ। वह अपने हिस्से की खीर भी मुनिराज को खिला देती है। अब भी मुनिराज के आहार चल रहे हैं। अब मुनिराज को दो हिस्सों की खीर चल चुकी है। माँ सोचती है यह भी एक बेटा है, और जो बाहर खड़ा है वह भी एक बेटा है। माँ के लिए दोनों बेटे समान हैं। उस माँ के मन में यह विचार चल रहा था कि अब क्या किया जाये? खीर तो बेटे के हिस्से की बची है माँ को निराश देख, बेटा कहता है– माँ! माँ! मुनिराज को मेरे हिस्से की खीर भी चला दो। माँ! मैं बाद में खा लूँगा। मुनिराज को और दो ना माँ! माँ! की समस्या हल हो जाती है। वह खुश होकर मुनिराज को और खीर चला देती है और देखती है कि खीर की कटोरी खाली नहीं हो रही है, वह आहार देती है मुनिराज का आहार पूर्ण हो जाता है। देखती है कि खीर अभी भी बची हुई। यह कैसा आश्चर्य है? वह विचार करती है और उसे मालूम पड़ता है कि यह महान ऋद्धि धारी मुनि हैं क्योंकि अक्षीणऋद्धिधारी

का आहार जहाँ होता है। उस चौके का आहार कभी समाप्त नहीं होता है। उनकी भावना देखो कि मुनिराज के आहार उनके यहाँ हुये यह सोच वह बहुत खुश हो जाते हैं। और अपना सौभाग्य मानती है इतने में बेटा आ जाता है और माँ से कहता है माँ! आज सबसे पहले मैं आपको खीर खिलाऊँगा क्योंकि आपने अपने हिस्से की खीर मुनिराज को दे दी है। माँ सोचती है बेटे को क्या हो गया? यह कैसी बातें कर रहा है? माँ सोचती है– बेटा! अभी छोटा है और माँ जैसे ही बेटे को खीर परोसती है बेटा कहता है कि माँ मैं अभी आता हूँ। वह जाता है और अपने सारे मित्रों को ले आता है। और कहता है–माँ! मेरे मित्रों को भी थोड़ी–थोड़ी खीर दो ना। माँ सभी बालकों को खीर देती है और देखती है खीर अभी भी समाप्त नहीं हुई इसके बाद गाँव के सभी मित्रों के परिवार जन को भोजन कराया पर खीर समाप्त नहीं हुई। माँ ने खीर खाई, सभी को खिलाई।

इस कहानी के अनुसार जिस भी घर में मुनिराज का आहार होता है उस घर में भोजन की कमी कभी नहीं पड़ती। सदा सम्पन्नता रहती है। कभी उस घर के लोगों को भूखा नहीं रहना पड़ता है। पूर्व जन्म के पापकर्म उदय से घर में भोजन करने को भोजन नहीं था। माँग–माँग कर खाते थे। लेकिन आज एक मुनिराज का आहार हुआ पुण्य कर्म के उदय से और पुण्य भावनाओं से दिया गया आहार समृद्धि को प्राप्त हो गया है। आहार में इतनी वृद्धि हुई कि सारा गाँव भोजन कर गया। भोजन समाप्त नहीं हुआ। यह किसी को मालूम नहीं कि कौन–सा कर्म कब उदय में आयेगा? जब आता है– तब उसकी पहचान होती है। इसलिये **कर्म करो सदा अच्छे, फल सदा अच्छा मिलेगा।** भगवान की स्तुति से पापकर्म पुण्यरूप परिणत हो जाते हैं। आप सभी पाप कर्म के उदय में घबराये नहीं, अपितु भगवान की भक्ति में लीन हो जायें वह कर्म अपने आप चला जायेगा।

बचपन से अब तक मैंने, इस दुनिया को देखा।
सबके हाथों में होती हैं, जुदी–जुदी रेखा।।

आज कर्मोदय कैसा है? कल कैसा होगा? इसका कोई भरोसा नहीं है। आप सुकर्म करो। जितने कर्म उदय में आयेंगे वे पुण्य रूप ही आयेंगे। दुःख में रोना नहीं, सुख में हँसना नहीं। हमेशा सम रहना। कोई भी कर्म आपका कुछ नहीं कर पायेगा। कभी हमारे पास धन होता है, कभी माँगने जाना पड़ता है। यही कर्म का उदय है। कभी भोजन दान देते हैं। कभी भोजन दान में लेना पड़ता है। यही कर्म का उदय है। कर्म के अनेक रूप सामने आते हैं। उसे समता से, प्रभु भक्ति से जीतो और जीवन

को खुशियों से भरते रहो। कर्म कभी बीमारियों के रूप में आता है कभी खुशियाँ लेकर आता है। बुरे कर्म के उदय में भी भगवान की भक्ति करते रहो। श्रद्धा को भटकने न दो। कुगुरुओं को न पूजो। पाप कर्म पुण्य रूप परिणत हो आयेगा और पापकर्म चला जायेगा। वीतराग भगवान की भक्ति से जन्म–जन्म के पाप टल जाते हैं। पुण्य रूप ढल जाते हैं। जीवन में खुशियाँ ही खुशियाँ आती है। आप भगवान पर, वीतराग गुरुओं पर सच्ची श्रद्धा रखें, आपका कल्याण अवश्य होगा।

जन्म–जन्म से जोड़ रखे, अपने सिर पर ओढ़ रखें।
जीवों ने जो पाप यहाँ, दुःख और संताप यहाँ।।
वे प्रभु के गुण गाने से, मंगल गीत सुनाने से।
छिनभर में टल जाते हैं, नहीं फटकने पाते हैं।।
भौंरे–सा जो काला है, जगत ढाकने वाला है।
ऐसा घोर अंधेरा हो, मिथ्यातम का डेरा हो।।
सूरज किरण निकलते ही, ज्ञानदीप के जलते ही।
सचमुच वह हट जाता है, मिथ्यातम छट जाता है।।

आप अपना विश्वास कुगुरु–कुदेवों पर नहीं रखें, सच्चे वीतराग देव पर करो। हर मुसीबत टल जायेगी। कर्म नष्ट हो जायेंगे। जीवन में सुख होगा। शांति होगी, प्रेम होगा, ये सब होने पर आपका जीवन धन्य होगा। कर्म के उदय में रोना नहीं, भगवान की स्तुति करना, रास्ता मिलेगा, समस्या हल होगी। आपका जीवन मनुष्य पर्याय धन्य हो जायेगी। भगवान का स्मरण प्रतिपल–प्रतिसमय करो, हर क्षण णमोकार जपो, कल्याण होगा।

*****

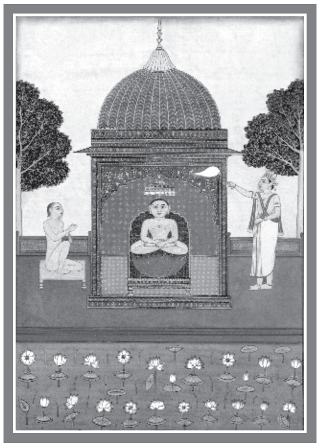

जिनवर की प्रभुता का प्रभाव

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ता–फल–द्युति–मुपैति ननूदबिन्दुः।।8।।

अन्वयार्थ :

नाथ	– हे स्वामिन्!	इति	– ऐसा
मत्वा	– मानकर	तनुधिया अपि	– अल्प बुद्धि वाला होता हुआ भी
मया	– मेरे द्वारा	इदं	– यह
तव	– तुम्हारी	संस्तवनम्	– उत्तम स्तुति
आरभ्यते	– प्रारंभ की जाती है	तव	– आपके
प्रभावात्	– प्रभाव से यह स्तुति	सतां	– सज्जनों के
चेतः	– चित्त को	हरिष्यति	– हरेगी
ननु	– निश्चित ही	उद बिन्दुः	– जल की बूँद
नलिनी	– कमलिनी के	दलेषु	– पत्तों पर
मुक्ताफल	– मोती की	द्युतिम्	– कान्ति को
उपैति	– प्राप्त होती है।		

भावार्थ :

हे नाथ! ऐसा मानकर ही मुझ अल्पबुद्धि ने आपकी स्तुति आरंभ की है। यह स्तोत्र आपके प्रभाव से सज्जनों को आनंदित करेगा। जैसे कमलिनी के पत्र पर पड़ी हुई पानी की बूँद जन–मन को आनंदित करती है।

सर्वारिष्ट योग निवारक

भावानुवाद

अरे कमलिनी के पत्ते पर, पड़ी ओस बूँदें।
मोती तुल्य दमकतीं उस पर, जन–मन आनन्दें।।
यही मानकर मेरे द्वारा, यह संस्तव रचना।
तव प्रभाव से हो जायेगी, सज्जन चित् हरना ।।8।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारिणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचन्द्र देव्यै नमः स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं अनेकसकंटसंसारदुःखनिवारणाय क्लीं हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।महाबीजाक्षरसहिताय

आपका प्रभाव

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनु–धियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी–दलेषु,
मुक्ता–फल–द्युति–मुपैति ननूद–बिन्दु।।8।।

भावार्थ– हे नाथ! जिस तरह कमलिनी के पत्र पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोती की तरह सुंदर दिखकर लोगों के चित्त को हरती है, उसी तरह मुझ अल्पज्ञ के द्वारा की हुई स्तुति भी आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को हरेगी।

ओस की बूँद का भी भला कोई मूल्य होता है? परन्तु वही बूँद जब कमलिनी के पत्र पर पड़ जाती है तब स्वभावतः ही वह मोती सा रूप धारण करके दर्शकों के मन को मोहित करती है। आखिर उस ओस की बूँद को मोती की आभा देने में किसका हाथ है? कमलिनी के पत्ते का ही, क्या यह स्वाभाविक प्रभाव नहीं है? अर्थात् अवश्य है। उसी भाँति स्तुति में गर्भित सारा चमत्कार आपके ही परम प्रसाद का परिणाम है। इसमें मेरा कुछ नहीं।

प्रिय आत्मन्!

भक्तामर स्तोत्र के अष्टम काव्य में प्रवेश पाकर हम सभी भव्य जीव रहस्य प्राप्त कर रहे हैं। प्रभाव शब्द इस काव्य की आत्मा है। प्रभाव शब्द काव्य की अन्तर्ध्वनि है। अन्तरात्मा की आवाज इसमें समाती है। आत्मानुभव की संवेदना और अनुभूति से रचा हुआ शब्द ही शब्द ब्रह्म कहलाता है। प्रभाव शब्द, शब्द ब्रह्म है। प्रत्येक वस्तु का प्रभाव होता है। जो होता है वही कथन में आता है। यह शरीर स्वभाव से अपवित्र है, अशुचि है किन्तु रत्नत्रय धर्म के प्रभाव से साधुओं का शरीर पवित्र माना गया है। पवित्र रत्नत्रय का प्रभाव यह हुआ है अपवित्र तन भी पवित्र और पूज्य हो गया। प्रभाव को समझे बिना प्रभावना अंग भी समझ में नहीं आयेगा, इसलिये समझो। प्रतिपल भाव बदलता है, प्रभाव बदलता है। तत्काल का भाव एक पल की पर्याय का भाव है, त्रिकाल का नहीं। **सदा भाव एक से नहीं होते, सबके भाव भाव से नहीं होते हैं।** भव एक हो सकता है किन्तु भाव एक नहीं हो सकते, भाव तो भिन्न–भिन्न ही होगा। जब भाव में भिन्नता है तब प्रभाव में भी भिन्नता अवश्य होगी।

उदाहरण से समझिये। आपने रोटी सिकते देखी होगी। रोटी पहले तवा पर सिकती है फिर अग्नि की आँच पर सिकती है। यदि तवा ने अग्नि का प्रभाव प्राप्त न किया होता तो वह तवा रोटी नहीं पका सकता था। जैसे– बर्तन की दुकान का तवा। एक वस्तु का प्रभाव दूसरी वस्तु पर पड़ता है। दूसरे का प्रभाव तीसरे तक पहुँच जाता है। देखिये– अग्नि का प्रभाव तवा पर पड़ा, तवा का प्रभाव रोटी पर पड़ा, तब कहीं रोटी पकी। यह पाकक्रिया आप प्रतिदिन देखते हैं।

हे प्रभु! रोटी पकाने की क्षमता तवा की निजी क्षमता नहीं है। वह क्षमता अग्नि के प्रभाव से तवा में आयी है। वैसे ही मैं स्तुति कर रहा हूँ। यह मेरी निजी क्षमता नहीं, एक मात्र आपका ही प्रभाव है जो स्तुति रच रही है। आपका प्रभाव जन–जन के चित्त को हरेगा। स्तोत्र आपका, प्रभाव आपका। यह है समर्पण की भाषा। **मैं आपका, मेरा सब कुछ आपका।** भक्ति आपकी, भक्तामर आपका।

त्वदीयं वस्तु तुभ्यं समर्पितम्।

अर्थात् आपकी वस्तु आपको समर्पित करता हूँ।

शिष्य विद्या को प्रकट कर रहा है इसमें गुरु का प्रभाव है। वनस्पति हरी हो रही है, इसमें जल का प्रभाव है। शिशु बलवान हो रहा है इसमें माँ के दूध का प्रभाव है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों प्रभाव उत्कृष्ट मिल जाये तो आत्मा परमात्मा हो जाता है। आचार्यश्री पूज्यपाद देव इष्टोपदेश शास्त्र में लिखते हैं।

योग्योपादेन योगेन, दृषदः स्वर्णता मता।

द्रव्यादि स्वादि सम्पत्ता, वात्मनो प्यात्मता मता।। इष्टोपदेश।।

जैसे योग्य उपादान के संयोग से पाषाण स्वर्णता को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही आत्मा योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को पाकर परमात्मा बन जाता है। न्यायोपार्जित द्रव्य ही पवित्र प्रभाव पैदा करता है। अन्याय अर्जित धन रखा हुआ भी दुष्प्रभाव छोड़ता है। मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा यदि सांगोपांग शुभलक्षण है तो शुभ प्रभाव पैदा करेगी। यदि आंगोपांगहीन अशुभ है तो दुष्प्रभाव पैदा करेगी। वैसे ही तिजोरी का धन प्रभाव पैदा करता है। ब्लडग्रुप की तरह पैसा ग्रुप भी होता है। जरा जाँच कीजिये, अन्यथा गलत धन की चपेट में आकर गलत चेष्टा कर सकते हैं। इसे एक कथानक से समझिये।

एक दिगम्बर मुनि को आहार चर्या में चोरी का द्रव्य आहार दान में दिया गया। मुनिराज के चोरी के भाव जागृत हो गये। मुनिराज उसी दानदाता के घर का स्वर्ण हार चुरा कर चल दिये। दूसरे दिन कमण्डलु में हार देखा। गुरु के समक्ष आलोचना की, प्रायश्चित लिया। गुरु ने समझाया– बेटा! चोरी का द्रव्य आहार में दिया गया होगा, उसका प्रभाव है। जा हार लौटा आ। मुनिराज हार लौटा आते हैं किन्तु बिना आहार किये लौट आते हैं। कल आहार किया चोरी का भाव, आज फिर यदि चोरी का आहार मिलेगा तो क्या भाव होंगे? धन्य है महाव्रती जो सदा अचौर्य व्रत पालते हैं। फिर भी द्रव्य ने इतना प्रभावित किया तो फिर हमारा क्या होगा? विचार करो।

विशुद्ध क्षेत्र में किये कार्य पवित्रता प्रदान करते हैं। अशुद्ध क्षेत्र में हुये कार्य अपवित्रता प्रदान करते हैं। क्षेत्रीय वर्गणायें शुभाशुभ प्रभाव छोड़ती है। शस्त्रों से निकलने वाली वर्गणायें हिंसा भाव को जन्म देती है, जबकि शास्त्रों से निकलने वाली वर्गणायें अहिंसात्मक भावों को जन्म देती है। मेरे हाथ में यह भक्तामर शास्त्र है। इस कृति से ग्रन्थ से, निकलने वाली वर्गणायें भक्ति ऊर्जा प्रवाहित करती है। शास्त्र का अपना पवित्र आभामण्डल होता है, जो पवित्रता प्रदान करता है। शास्त्र नहीं पढ़ने पर भी शास्त्र अपनी ऊर्जा तो प्रदान करेगा ही। आध्यात्मिक शास्त्र ऊर्जा प्रदान करते हैं। चारित्रसार हमें चारित्रिक ऊर्जा देता है। पवित्र किताबें हमारे जीवन में पावनता घोलती है। वहीं अपवित्र किताबें अपवित्रता घोलती है। पावन पदार्थ और पावन पुरुष हमें पवित्रता देते हैं।

सर्वशक्तिमान प्रभाव आत्मबल का है। आत्मबल के प्रभाव से महाबलवान् कर्म भी पराजित होते हैं। सर्वग्रह में सर्वाधिक बलवान आत्मबल है। ग्रहदशा कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो? आप आत्मबल से कार्य करो। आत्मबली जीव ही कर्मनाश कर मोक्ष जाते हैं। रत्नत्रय के बल से आत्मबल आता है। आत्मबल के समक्ष समस्त बल निर्बल हैं।

प्रिय आत्मन्!

रत्नत्रय के तेज तथा कांति के प्रभाव से आत्मा को प्रभावित करना चाहिये। मंदिर के बाहर चर्चा कर रहे हैं ,मंदिर के भीतर अर्चा कर रहे हैं। बाहर गये तो चर्चा शुरू, भीतर आये तो अर्चा शुरू। वीतराग को देखा,नमस्कार के भाव। मुनिराज को देखा,नमस्कार के भाव। यह है– **द्रव्य का भाव पर प्रभाव।**

नोकर्म भाव कर्म को प्रभावित करता है। शास्त्र नो कर्म है, साधन है, यदि ये सम्यक् हैं तो हमारे भाव सम्यक् होंगे। मिथ्या हैं तो भाव मिथ्या होंगे। पुरुष, स्त्री का शरीर नोकर्म है, वह वैसे भावों को जन्म देगा। आपके सामने जैसा नोकर्म होगा, वैसे भाव होंगे, प्रभाव छोड़ेंगे। नोकर्म का प्रभाव भाव कर्म पर पड़ता है।

प्रिय आत्मन्!

किसी एक क्रोधी को देखकर दूसरे के अंदर क्रोध जागता है। क्रोध के क्षयोपशम से हमारे अंदर क्रोध बनता जाता है। नोकर्म के अनुसार भावकर्म, भावकर्म के अनुसार–नोकर्म। गुरु की विनय को देखकर शिष्यों में विनय का गुण आता है और वे विनयशील बन जाते हैं। जैसे– जिनसेन आचार्य साहित्याचार्य थे उनका शिष्य साहित्याचार्य हुआ। हमें जैसा नोकर्म मिलता है वैसे भावकर्म होते हैं, वैसा द्रव्य कर्म होता है।

प्रिय आत्मन!

क्षेत्र का प्रभाव भी क्षेत्र पर पड़ता है। यह मकान यहाँ बना है, इस मकान पर बाजू के मकान का प्रभाव पड़ेगा,क्षेत्र का प्रभाव क्षेत्र पर।शास्त्रों में कहा हैं– सात सिद्धक्षेत्रों की माटी से, तीर्थक्षेत्रों की माटी जिनेन्द्र भगवान के मंदिर की नींव में भरना चाहिये। सम्मेदशिखर,चंपापुर,पावापुर, गिरनारजी इत्यादि क्षेत्रों की मिट्टी लेकर आते हैं और पंचकल्याणकों में प्रतिमा की शुद्धि पहले उससे होती है, क्षेत्र का प्रभाव क्षेत्र पर पड़ता है। क्षेत्र का प्रभाव काल पर पड़ता है। क्षेत्र कैसा है? वहाँ का काल अलग होगा। आप जयपुर में है, ग्रीष्मकाल में रात्रि के आठ बजे तक उजाला रहता है, क्षेत्र का प्रभाव काल पर भी पड़ता है।

प्रिय आत्मन्!

क्षेत्र का प्रभाव भाव पर पड़ता है। क्षेत्र के अनुसार भाव होते हैं। मंदिर के परिणाम अलग होंगे घर के परिणाम अलग होंगे, दुकान के परिणाम अलग होते हैं, सिनेमाघर के परिणाम अलग होते हैं। एक व्यक्ति घर पर बैठकर जाप करता है, एक मंदिर में बैठकर जाप करता है, एक नदी के किनारे जाप करता है, एक वन में बैठकर जाप करता है, एक पर्वत पर बैठकर जाप करता है, एक अतिशय क्षेत्र पर जाकर जाप करता है, एक सिद्धक्षेत्र पर जाप करता है। तब आचार्य कहते हैं– सिद्धक्षेत्र पर जाप करने वाले को अधिक फल मिलता है क्योंकि सिद्धक्षेत्र अधिक विशुद्धि को जन्म देता है।

आचार्यश्री कहते हैं– एक समय में पुद्गल परमाणु चौदह राजु ऊपर जाता है। हम नमस्कार करते हैं, हमारा नमस्कार सिद्धालय पहुँच जाता है। जो मैंने भाव बनाये हैं, वे परमाणु सिद्धालय पहुँच जाते हैं और हम यही रह जाते हैं। हम यहाँ भक्तामर पढ़ रहे हैं, हमारे भक्तामर के परमाणु हमारे परिवार, हमारे हृदय तक पहुँच रहे हैं।

एक सज्जन कहते हैं कि आचार्यश्री! हमारा बेटा विदेश में आशीर्वाद माँग रहा है। बेटा विदेश में, यहाँ से आशीर्वाद क्या करेगा? आशीर्वाद के परमाणु की शक्ति इतनी है यहाँ मन से आशीर्वाद दिया जायेगा वे परमाणु वहाँ पहुँच जायेंगे। तुम्हारा फोन बाद में पहुँचे लेकिन मन के परमाणु वहाँ पहुँच जायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

काल का प्रभाव द्रव्य पर पड़ता है। यदि निर्वाण महोत्सव की बेला हमारे भावों को उज्ज्वल बनाती है, द्रव्य को पवित्र करती है। जब शरद पूर्णिमा का चाँद आता है, तो भोजन की थाली को ऊपर रख देता है, कि अमृत टपकेगा। अमृत टपके या न टपके और जब सूर्य ग्रहण होता है तो भोजन बनाना बंद कर देता है। जब शरद पूनम का चाँद आया तो खीर छत पर रख दी लेकिन जैन व्यक्ति ऐसा नहीं करते हैं वो जानते हैं कि रात्रि भोजन पाप है काल का प्रभाव द्रव्य पर पड़ता है। शरद पूर्णिमा का चाँद प्रभाव डालता है और प्रभाव है आप देखिये। आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज शरद पूर्णिमा के दिन जन्में हैं, ज्ञानमति माताजी शरद पूर्णिमा के दिन जन्मी हैं, प्रभाव है।

काल का प्रभाव क्षेत्र पर पड़ता है। काल वहाँ कैसा है? वहाँ का क्षेत्र कैसा होगा। कहीं पर ग्रीष्मकाल अधिक पड़ता है, वहाँ का क्षेत्र सूखा रहेगा। कहीं पर शीतकाल अधिक पड़ता है वहाँ का क्षेत्र वैसा रहेगा। वर्षाकाल अधिक है, क्षेत्र वैसा रहेगा। काल के अनुसार क्षेत्र हो जाता है। फिर काल के अनुसार भाव हो जाते हैं।

काल का प्रभाव भाव पर। पर्यूषण पर्व एक वर्ष में तीन बार आते हैं, हम बरसात में क्यों मनाते हैं।क्योंकि भाद्रपद माह में सम शीतोष्ण मौसम रहता है। इस मौसम में साधना भाव अच्छे रहते हैं। जितनी साधना बरसात में हो जाती है, उतनी साधना ग्रीष्मकाल और शीतकाल में नहीं होती है, काल का प्रभाव भाव पर पड़ता है।

तुम्हारा शत्रु भी क्यों न हो? यदि तुम छह माह तक निरंतर अच्छे भाव बनाते रहो तो सामने वाले के वैसे भाव बन ही जायेंगे। नियम से अच्छे भाव बनेंगे, उज्ज्वल भाव बनेंगे। माँ तेरा बेटा कितना भी खराब हो तू अच्छे भाव रखना, तेरे बेटे के भाव तेरे प्रति अच्छे हो ही जायेंगे। माँ का दूध का प्रभाव बेटे पर अलग पड़ेगा और पालन करने वाली धाय के दूध का प्रभाव अलग पड़ता है।

दो बेटों का जन्म हुआ, दोनों ने दीक्षा ले ली। फिर दो बेटों का जन्म हुआ, बेटों ने दीक्षा ले ली। पिता चिंतित आखिर ऐसा क्यों होता है कि जो बेटे जन्म लेते हैं वे ही दीक्षा ले लेते हैं? किसी ने बताया कि माँ गर्भ से ही वैराग्य का पाठ सिखाती है जन्म से ही उन्हें ज्ञान और वैराग्य की बातें बताती हैं। गर्भावस्था में एक ही बात कहती है मुनि बनना। दूध पिलाते समय एक ही भाव बनाती है, भोजन कराते समय एक ही भाव बनाती है कि मुनि बनना।

प्रिय आत्मन्!

जब मैं सोलापुर में था वहाँ के जीव मुझे आहार कराते समय बोलते थे–

अनशन स्वरूपोऽहं।।

निराहार स्वरूपोऽहं।।

स्वरूप मेरा अनशन है। निराहार मेरा स्वरूप है। कुंदकुंद बेटे की माँ एक ही पाठ पढ़ाती– **शुद्धोसि बुद्धोसि निरंजनोसि संसार माया परिवर्जतोसि। हे बेटे!** तू शुद्ध है,बुद्ध है, निरंजन है। माँ ऐसा पाठ पढ़ाये और बेटा मुनि न बने, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। क्यों न बनेगा? अवश्य बनेगा।

प्रिय आत्म्न!

क्षेत्र का प्रभाव द्रव्य पर पड़ता है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से कई बार राजस्थान वासियों ने कहा– महाराज आप चलिये। आचार्यश्री कहते हैं– मेरी दुकान बुंदेलखण्ड में ही अच्छी चलती है। मुझे यहाँ पर सोने के सिक्के मिलते हैं। अर्थात् दीक्षार्थी संयमी। तात्पर्य भाव का प्रभाव कैसा पड़ता है? सातवें बेटे का जन्म हुआ राजा ने सातवें बेटे को जन्म देते ही माँ से जुदा कर दिया और धाय को सौंप दिया। धाय से कहा– तुम पालन करना। आगे मेरा राज्य कौन चलायेगा? जब सभी दीक्षा लेते जायेंगे तो कौन राज्य चलायेग? तो माँ ने कहा– इसकी जिम्मेदारी मैं लेती हूँ ये सातवाँ बेटा राज्य चलायेगा लेकिन पिता को राज्यमोह के कारक्ण अपनी रानी पर भी विश्वास न हुआ। राजा ने पुत्र धाय को सौंप दिया। बेटा धाय का दूध पीता था, माँ का नहीं। माँ ने बहुत कुछ

सिखाया–युद्ध कौशल, राजनीति, रणनीति, अस्त्र–शस्त्र विद्या आदि, लेकिन जिसने माँ का दूध न पिया हो उसका प्रभाव कितना पड़ेगा? बेटा युद्ध में गया। जाते–जाते माँ ने छोटी–सी ताबीज गले में बाँध दी। बेटे जब कोई आपत्ति आये तो ताबीज को खोलकर पड़ लेना। बेटा युद्ध स्थल पर गया, युद्ध में देखा सामने बड़ी सेना है। पीठ दिखाकर के भागने की नौबत आ गई। तब उसने देखा, माँ ने एक ताबीज दी थी क्या लिखा? पीठ दिखाने की क्षत्रिय पुत्र होने के बाद बेटा तूने माँ का दूध नहीं पिया है। माँ के दूध के साथ तेरे अंदर क्षत्राणी का दूध पीते ही तेरे अंदर क्षत्रिय के भाव हो रहे तूने तो धाय का दूध पिया है इसलिये उसी के भाव हैं। वह तत्त्व तेरे पास नहीं कि तू शत्रु सेना से सामने कर सके। जा बेटे! तेरे छःभाई जिस पथ पर चले हैं, तू भी उसी पथ पर चला जा। तेरे छःभाई मुनि बन चुके हैं अब तेरा भी यही पथ है। और बेटा क्या करता है? वहीं से रास्ता मोड़ देता है और वन को चल देता है।

भाव का प्रभाव द्रव्य पर पड़ता है। माँ रोटी बना रही है। गाना चल रहा है, गाना का प्रभाव रोटी में जायेगा। मैंने देखा है कि बचपन में मेरी दादी माँ! जब गेहूँ पीसती थी उस गेहूँ के साथ ही, प्रभु पतित पावन की विनती, बारह भावना पढ़ती थी, भाव का प्रभाव द्रव्य पर पड़ता है, सत्य है। बुंदेलखंड साधुओं को देश है। भाव का प्रभाव क्षेत्र पर, क्षेत्र कितना भी अशुद्ध हो भक्तामर का पाठ करा देते हैं। घर में दो–दो, तीन–तीन घंटे जिनवाणी का स्वाध्याय हो रहा है, घर में दादी माँ है, सामायिक रोज कर रही है। प्रभाव जायेगा कहाँ? घर में बैठकर कोई एक व्यक्ति भी जाप करता है तो उसकी जाप का प्रभाव पड़ेगा। यदि घर में बैठकर पाप होता है तो पाप का प्रभाव भी उसी घर में पड़ता है। हम जो करेंगे उसी का तो प्रभाव पड़ेगा।

भाव का प्रभाव भाव पर पड़ता है। हमारे भाव दूसरे के भावों को बनाने में साधक है। आचार्य मानतुंग स्वामी ने भक्तामर स्तोत्र में लिख दिये। हम सब भक्तामर पढ़ रहे हैं। उनके भावों पर प्रभाव मुझ पर पड़ा, मेरे भावों का प्रभाव आप पर पड़ रहा है। भाव का प्रभाव भाव पर, भाव का प्रभाव क्षेत्र पर, भाव का प्रभाव काल पर, भाव अच्छे हैं तो काल अच्छा हो जाता है कोई भी काम करना हो यदि भाव तुम्हारे उत्कृष्ठ हैं तो फिर काल को भी पराजित कर देंगे।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।।

प्रिय आत्मन्!

यहाँ पर जिसके परमाणु अधिक होते हैं वह अपने रूप नीचे वाले को परिणमन करा लेता है।जिसके परिणाम ऊँचे होते हैं वह परिणमन कर जाता है। यह बात परम सत्य है। जो अधिक शक्ति वाला होता है वह कम शक्तिवाले को अपने में परिणमन करा लेता है। एक पाँच किलो की गुड़ की ढेली है वह ठेले में से उतारते समय कुछ धूल ढेली पर गिर गई तो वह धूल भी गुड़ के भाव बिकेगी और यदि पचास ग्राम गुड़ है और रेती में गिर जाये तो रेती में ही चला गया, जिसके परिणाम अधिक उज्ज्वल होते हैं वह कम परिणाम वाले को अपने में परिणमन रूप कर लेता है। जिसके परिणाम अधिक बुरे होते हैं वह कम उज्ज्वल रूप परिणाम वाले को अपने रूप बना लेता है। इसलिये प्रभाव किसका है?किस पर है? कैसा है?

प्रिय आत्मन्!

भाव का प्रभाव भाव पर– मेरे भाव जैसे हैं , सामने वाले के भी, मैं वैसे भाव बना दूँगा।

प्रिय आत्मन्!

आज साधु लोग इतना शुद्ध आहार क्यों लेते हैं? जितना शुद्ध आहार लेंगे उतने शुद्ध परिणाम होंगे। आहार ही शुद्ध नहीं होगा तो विचार शुद्ध नहीं होगा।

सोलह प्रकार का भाव– 1. द्रव्य का प्रभाव द्रव्य पर। 2. द्रव्य का प्रभाव क्षेत्र पर। 3. द्रव्य का प्रभाव काल पर। 4. द्रव्य का प्रभाव भाव पर। 5. क्षेत्र का प्रभाव द्रव्य पर। 6. क्षेत्र का प्रभाव काल पर। 7. क्षेत्र का प्रभाव भाव पर। 8. क्षेत्र का प्रभाव क्षेत्र पर। 9. काल का प्रभाव द्रव्य पर। 10. काल का प्रभाव क्षेत्र पर। 11. काल का प्रभाव काल पर। 12. काल का प्रभाव भाव पर। 13. भाव का प्रभाव भाव पर। 14 भाव का प्रभाव द्रव्य पर। 15. भाव का प्रभाव क्षेत्र पर 16. भाव का प्रभाव काल पर। महान् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के प्रभाव से आत्मा प्रभावित होती है। पानी में वस्त्र निचोड़कर डाल देना सोला नहीं है। चार का चार से गुणा करने पर सोलह बनता है। **सोलह प्रकार की विधा जिसमें है वह सोला कहलाता है।**

प्रिय आत्मन्!

शिष्य कहता है गुरूदेव मैं आपका ही हूँ और आपके प्रभाव से ही आगे जाऊँगा। मेरा जो भी विकास होगा मेरी जो भी उन्नति होगी, मेरी जो भी प्रगति होगी, आपके प्रभाव से होगी। मैं आपका

हूँ– आपके प्रभाव से। फूल कहता है डाली से,मैं आपका हूँ और आपके प्रभाव से बढ़ रहा हूँ। लहर कहती है सागर से मैं आपकी हूँ और आपके प्रभाव से ऊपर उठ रही हूँ। यदि सागर नीचे न होता तो लहर ऊपर कहाँ उठती? यदि लहर ऊपर है तो सिद्ध करती है कि सागर नीचे है लहर का ऊपर उठना सागर का नीचे होने का संकेत है। हे प्रभु! यदि मेरा नाम हो रहा है तो आपका प्रभाव है।

प्रभु आपकी कृपा से,
सब काम हो रहा है।।

प्रिय आत्मन्!

यह भक्ति की भाषा है मैंने पिछले सन् 2011 गढ़ाकोटा (म.प्र.) चातुर्मास में देखा एक परिवार में घर में रखा सोना पानी बन गया। घर में जगह–जगह आग लग गयी है। व्यक्ति नाना प्रकार के कुमंत्र तो कर लेता है लेकिन सुमंत्र करना नहीं जानता है। ऐसे जीव हैं कि नाना प्रकार के कुमंत्रों के प्रभाव से व्यक्ति को हानि पहुँचाते हैं।

गुण ग्रह्णोतिहि सज्जनः।।

प्रिय आत्मन्!

गुणों को ग्रहण करने वाले सज्जन कहलाते हैं। धन को हरने के लिये, रूप को हरने के लिये, स्तोत्र नहीं है। कोई किसी को वश में करने के लिये, धन हानि करने के लिये, व्यापार लूटने के लिये आदि नाना प्रकार के कार्य करने के लिये कुमंत्रों का प्रयोग करते हैं तथा मंत्रों का प्रभाव छोड़ते हैं। लेकिन भक्तामर स्तोत्र सज्जनों के चित्त का हरण करने वाला, पापों से निवृत्ति दिलाने वाला है।

प्रिय आत्मन्!

सरोवर में कमल के फूल खिले हुये हैं। और शीतऋतु का मौसम है। जब ओस के? बढ़ते हैं तो ऐसे चमकते हैं कि मोती चमक रहे हो।

पानी की भी बूँद अगर, गिरे पलाश के पत्तों पर।
मोती तुल्य दमकती है, चम–चम चारु चमकती है।।
यहीं सोच प्रारंभ किया, मंगल गीतारम्भ किया।
सज्जन खुश हो जायेंगे, फूले नहीं समायेंगे ।।

प्रिय आत्मन्!

सज्जन खुश हो जाते हैं ऐसा **महान स्तोत्र है। उदाहरण देखिए–पानी की बूँद है।** बूँद तो पानी की है पर गिरी कहाँ? यह तो देखो! पानी की बूँद तो एक ही है। वहीं पानी की बूँद केले में जाती है कपूर बन जाती है। सीप में जाती है तो मोती बन जाती है। गन्ने में जाती है तो मधुर बन जाती है। नीम में जाती है तो कड़वी बन जाती है। नींबू में जाती है तो रसायन बन जाती है। वहीं पानी की बूँद गाय पी लेती है तो दूध बन जाती है। यहीं पेंसिल तुम्हारे पास है यही तो तुमने सबको बाँटी है। यही कॉपी तो तुमने सबको बाँटी, यही किताब सबको बाँटी। उसी पेंसिल से तुमने कॉपी पर दिन भर का व्यापार लिख दिया, उसी पेन से एक साधु ने शास्त्र लिख दिया। ठीक इसी प्रकार अक्षर तो वहीं है, उन्हीं अक्षर को तुमने समाचार पत्रों में पहुँचा दिये, वही अक्षर साधु ने लिख दिये, जिनवाणी बनते चले गये। अक्षर वही है उभय शक्ति है। प्रयोग कहाँ हो रहा है? कहाँ पहुँच रहे हैं? यदि वह पानी की बूँद पलाश के पत्ते पर न गिरती, कमल के पत्ते पर न गिरती, तो शोभा न पाती। मेरे अक्षर की बूँदें, मेरी भक्ति की बूँदें, मेरे शब्दों की बूँदें, जिनगुण रूपी कमल के पत्ते पर न गिरती। कमल का पत्ता तो निर्लेप होता है, पानी को छूता नहीं है, अबद्ध, अस्पुस्ट होता है। आत्मा वैसा है जैसे–कमलिनी का पत्ता होता है।

प्रिय आत्मन्!

जब पानी की बूँद कमल के पत्तों पर गिर जाती है और मोतियों की उपमा को पा लेती है उसी तरह मेरे यह शब्द आपकी स्तुतियों में रचे गये हैं, और आपके प्रभाव से क्या मोतियों की उपमा को नहीं पायेंगे? अवश्य पायेंगे। **जब एक कमल अपना प्रभाव दिखाता है तो पानी की बूँद को महान बना देती है, सीप प्रभावित हो जाती है तो पानी की बूँद को मोती बना देती है।** आप के प्रभाव से मेरा स्तोत्र वीतराग स्तोत्र बन जाये। आपके प्रभाव से मेरा स्तोत्र सर्वज्ञता को जन्म देने वाला बन जाये। आपके प्रभाव से मेरा स्तोत्र सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान,सम्यक्चारित्र जन्मदाता बन जाये तो हे प्रभु! इससे बड़ी क्या विशेषता होगी?

*****

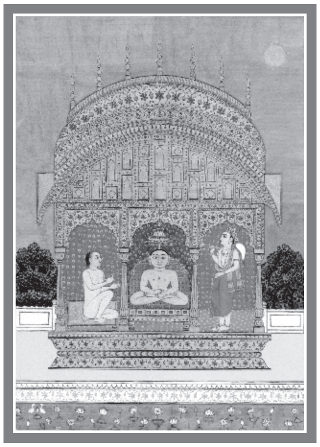

प्रभु नाम ही पापनाशक

आस्तां तव स्तवन–मस्त–समस्त दोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र – किरणः कुरुते प्रभैव
पद्मा–करेषु जलजानि विकास–भाञ्जि।।9।।

अन्वयार्थ :

तव	– तुम्हारी	अस्त–समस्त दोषम्	– सर्व दोषों से रहित
स्तवनं	– स्तुति	दूरे	– दूर
आस्ताम्	– रहने दो	किन्तु त्वत्	– पर आपकी
संकथा	– उत्तम कथा	अपि	– भी
जगताम्	– जगत के प्राणियों के	दुरितानि	– पापों को
हन्ति	– नष्ट करती है	सहस्र किरणः	– हजार किरण वाला सूर्य
दूरे	– दूर	आस्तां	– रहता है, पर उसकी
प्रभा	– प्रभा	एव	– ही
पद्माकरेषु	– सरोवरों में	जलजानि	– कमलों को
विकासभाञ्जि	– विकसित	कुरुते	– कर देती है।

भावार्थ :

हे भगवन्! पूर्ण निर्दोष आपका–स्तोत्र तो दूर की बात है आपका नाम जाप ही संसारी प्राणियों के पापों को हर लेता है। जैसे आकाश में रहने वाला सूर्य तो रहे उसकी किरणें ही सरोवरों में कमलों को खिला देती है।

अभीप्सित फलदायक

भावानुवाद

दूर रहे वह संस्तव तेरा, जो निर्दोष अरे।
तेरी कथा मात्र ही जग के, सारे पाप हरे।।
दूर दिवाकर नभ में रहता, जग प्रभाव फैले।
सरोवरों में देखो सुन्दर, सुन्दर कमल खिले।।9।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्ण सोदाराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः फट् स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ नमो भगवते जय यक्षाय ह्रीं ह्रूं नमः स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं सकलमनोवांछितफलदात्रे क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

नाम महिमा

आस्तां तव स्तवन–मस्त–समस्त–दोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि।।9।।

भावार्थ– हे चरित्रनायक! सम्पूर्ण दोषों से रहित आपका पवित्र कीर्तन तो बहुत दूर की बात है, मात्र आपकी चरित्र–चर्चा ही जब प्राणियों के पापों को समूल नष्ट कर देती है तब स्तवन की अचिन्त्य शक्ति का तो कहना ही क्या?सूर्यागमन के पूर्व ही जब उसकी प्रभापुंज मात्र से सरोवरों के कमल खिल उठते हैं, तब सूर्योदय होने पर तो उसकी किरणों के स्पर्श से वे खिलेंगे ही खिलेंगे,इसमें सन्देह नहीं, अर्थात् सुदूरवर्ती होने पर सूर्य भी अपनी किरणों के माध्यम से सरोवरों के कमलों को विकसित कर देता है।

प्रिय आत्मन्!

भक्तामर स्तोत्र की अमर भक्तिधारा में अवगाहन करते हुये अपने चित्त को उज्ज्वल, शीतल, निर्मल बनाते हुये पापों का प्रक्षालन, पुण्य का संचय, उपयोग की निर्मलता, विषयों का विसर्जन, कषायों का त्याग करके, ज्ञान और वैराग्य के साथ हमारे अंतर हृदय में अपार श्रद्धा का सागर लहरा रहा है, भक्ति की लहरें उठ–उठ के आ रही हैं। हे प्रभु! आपके प्रभाव से, आपके स्तोत्र के प्रभाव से।

पुद्गल का पुद्गल पर प्रभाव पड़ता है। पुद्गल का जीव पर प्रभाव पड़ता है। जीव का पुद्गल पर प्रभाव पड़ता है। ये प्रभाव शब्द जो है आठवें काव्य का गूढ–रहस्यात्मक शब्द है। इस स्तोत्र का पठन ही भव्यों के चित्त को उज्ज्वल करेगा, लेकिन प्रभाव आपकी ही रहेगा। यह जल आपके प्रभाव से गंधोधक बन जायेगा, मैं मात्र आप पर जल का ढालना शुरू कर रहा हूँ। यह जल आपके प्रभाव से मंत्रित हो जायेगा, मैं तो मात्र मंत्र जपना प्रारंभ कर रहा हूँ। जीव का जीव पर प्रभाव पड़ता है, जीव का अजीव पर प्रभाव पड़ता है, अजीव का अजीव पर प्रभाव पड़ता है और अजीव का जीव पर प्रभाव पड़ता है। कल हमने सोलह प्रकार से प्रभाव समझा था। द्रव्य का द्रव्य पर प्रभाव, द्रव्य का क्षेत्र पर प्रभाव, द्रव्य का काल पर प्रभाव, द्रव्य का भाव पर प्रभाव, फिर क्षेत्र से शुरू किया क्षेत्र का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पर प्रभाव, काल का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पर प्रभाव और भाव का द्रव्य, क्षेत्र,

काल, भाव पर प्रभाव पड़ता है। सोलह प्रकार से प्रभाव समझा। मैं कौन–सा द्रव्य हूँ? मैं जीव द्रव्य हूँ, आत्म द्रव्य हूँ। सर्वप्रथम प्रभाव तो मेरा ही मेरे ऊपर पड़ता है, बाहर का प्रभाव मेरे ऊपर पड़ता है। जैसे–दूध में शक्कर डाली, प्रभाव अलग हुआ। दूध में घी डाला, प्रभाव अलग हुआ। दूध में नींबू निचोड़ दिया, प्रभाव अलग हुआ। यह है पुद्गल पर पौद्गलिक प्रभाव– रासायनिक क्रिया हो गई लेकिन एक जीव का दूसरे जीव पर प्रभाव पड़ता है। भगवान महावीर स्वामी विराजमान है। इसी वन में गाय और शेर एक घाट पर पानी पी रहे हैं, क्या हो गया? महावीर स्वामी के आत्मद्रव्य से निकलने वाली विशुद्धि ने उस क्षेत्र को प्रभावित कर दिया है। उस क्षेत्र में जो भी जीव आयेंगे उनके परिणाम विशुद्ध हो जायेंगे। ये है द्रव्य का द्रव्य पर प्रभाव, द्रव्य का क्षेत्र पर प्रभाव, फिर द्रव्य का काल पर प्रभाव। और द्रव्य का भाव पर प्रभाव। शेर जैसे क्रूर परिणामी जीव वात्सल्यमय हो गये। **जीव का जीव पर प्रभाव** महावीर की आत्मा का प्रभाव शेर पर पड़ता है, शेर की आत्मा का प्रभाव उन मुनिराजों पर पड़ रहा है। एक आत्मा दूसरे आत्मा को प्रभावित करती है। अभी घड़ी बंद है, सेल डाल दिया चालू हो गई, यह अजीव द्रव्य का दूसरे अजीव द्रव्य पर प्रभाव है। एक अजीव का जीव द्रव्य पर प्रभाव पड़ता है। जैसे शुद्ध भोजन किया, परिणाम शुद्ध होना शुरू हो गये। अशुद्ध भोजन किया, परिणाम अशुद्ध हो गये। जीव का अजीव पर प्रभाव है। मैंने भाव शुद्ध बनाये, मंत्रों का उच्चारण शुरू किया, जल मंत्रित हो गया, पिलाया, औषधि का काम हो गया। जीव का अजीव पर प्रभाव यही है।

प्रिय आत्मन्!

प्रभाव को समझें कि मुझ पर किसका प्रभाव पड़ रहा है? और मैं अपना प्रभाव किस पर छोड़ रहा हूँ। मुझ पर किसका प्रभाव पड़ रहा है और कैसा प्रभाव पड़ रहा है? जिसका प्रभाव पड़ रहा है, उसका प्रभाव मेरे योग्य है कि नहीं, और कैसा प्रभाव पड़ रहा है? वह प्रभाव मेरे लिये पावन और पवित्र बनायेगा कि नहीं? **प्रभाव के बिन प्रभावना होती कहाँ है?** प्रभाव क्या है? **प्रकृष्ट भाव ही तो प्रभाव है।** जहाँ प्रकृष्ट भाव नहीं है, वहाँ प्रभावना नहीं। **उत्तम भाव होना, मंगल भाव होना, पवित्र भाव होना, पावन भाव होना ही प्रभावना है। पावन भावना प्रभावना है, प्रकृष्ट भावना प्रभावना है।**

प्रिय आत्मन्!

मेरी आत्मा में जो दर्शन, ज्ञान चारित्र के माध्यम से विशुद्धि की जाती है वह मेरी आत्मद्रव्य का प्रभाव है। आज आत्मद्रव्य के प्रभाव से आत्मा प्रभावित हो गई और प्रभाव मेरे पर पड़ता है। सोने को तपाने के लिये, शुद्ध करने के लिये, सोलह ताव दिये जाते हैं। माना अभी चार ताव दिये हैं, बारह

ताव देना बाकी है। यदि हम चार भी ताव दे चुके हैं तो सोना उतना प्रभावित हो चुका है। अगली बार जब भी तपाओगे तो वह ताव पाँचवाँ कहलायेगा और अगली बार तपेगा छठा ताव होगा अर्थात् उतनी शुद्धि होती जा रही है, उतना प्रभाव होता जा रहा है। आज मैंने णमोकार की एक माला जपी है, उतनी अशुद्धि मेरी आत्मा से निकली। आज मैंने भक्तामर का एक काव्य पढ़ा है, मेरी आत्मा से उतनी अशुद्धि निकल चुकी है। सोलह ताव देने पर सोना पूरा शुद्ध होता है। आप कितने ताव दे चुके हैं? हमारा पहला ताव बेकार नहीं गया, दूसरा ताव भी प्रभावशाली है, तीसरे ताव का प्रभाव अलग है, चौथे ताव का प्रभाव अलग है, पाँचवे ताव का प्रभाव अलग, **एक–एक ताव के प्रभाव से सोना शुद्ध हो रहा है।** पुद्‌गल का पुद्‌गल पर प्रभाव, अग्नि पुद्‌गल और सोना पुद्‌गल दोनों एक दूसरे को प्रभावित और शुद्ध कर रहे हैं। चेतना को प्रभावित करने के लिये चेतना–चेतना से, आत्मा–आत्मा से प्रभावित होना चाहिये। **आत्मा पौद्‌गलिक आकर्षण से नहीं, रत्नत्रय से प्रभावित होती है।** पुरुषार्थसिद्धि उपाय शास्त्र में आचार्य श्री अमृतचन्द्र सूरि प्रभावना अंग का लक्षण कहते हैं–

आत्माप्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा सततमेव।
दान–तपो जिनपूजा, विद्यातिशयश्च जिनधर्मः।।

अर्थात् रत्नत्रय के प्रभाव से आत्मा प्रभावित करो। अग्नि के प्रताप से तुमने सोने को शुद्ध करना सीखा है। रत्नत्रय के प्रताप से स्वयं की आत्मा शुद्ध करो। चार ताव लगने के बाद सोना कुछ शुद्ध हो गया, उसी तरह मेरी आत्मा इस भव में जितनी शुद्ध हो गयी, अगला भव उसके आगे से शुद्ध करेगा और अगले भव की साधना ही मंगलकारी साधना है। किंचित् भी ऐसा नहीं है कि कहीं अमंगलकारी हो। आज की साधना जो हो गई, भविष्य का मार्ग प्रशस्त करेगी। आत्मा–आत्मा को प्रभावित करता है मेरी आत्मा का प्रभाव मुझ पर पड़ता है।

बीज का प्रभाव उसी पौधे पर पड़ता है, दूसरे पौधे पर पड़े या न पड़े। उसी तरह मेरा प्रभाव दूसरे पर पड़े या न पड़े, पहले तो मेरे ऊपर ही पड़ेगा। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, मैंने अपने आप को किससे प्रभावित किया है? मैं किन–किन से प्रभावित हूँ? कितना ज्ञान से प्रभावित हूँ? कितना श्रद्धान से प्रभावित हूँ? कितना चारित्र से प्रभावित हूँ? कितना तप से प्रभावित हूँ? कितना संयम से प्रभावित हूँ? कितना शील से प्रभावित हूँ? कितना स्वाध्याय से प्रभावित हूँ? कितना प्रतिक्रमण से प्रभावित हूँ? कितना प्रत्याख्यान से प्रभावित हूँ? अरे! हम ये कहते हैं कि मैं आपसे प्रभावित हूँ।

प्रिय आत्मन्!

आप, आपसे प्रभावित होइये। आप किससे प्रभावित? आपके अंदर कौन–से गुण ने प्रभावित किया? पहला प्रभाव मेरी आत्मा ही है। अपनी आत्मा को प्रभावित करने लग जाये, तब विशेषता है। **जल यदि जल को शुद्ध करने लग जाये,** जल–जल को शुद्ध कैसे करता है? जल में जो लहरें उठती हैं, वही लहरें जल को शुद्ध करती हैं। उसी तरह आत्मा में आने वाला ज्ञान, दर्शन, चारित्र ही आत्मा को शुद्ध करेगा। समुद्र को शुद्ध करने के लिये कोई जाता है क्या? लेकिन मलिन करने के लिये लाखों–लाखों नदियाँ हैं। समुद्र के जल को मलिन करने के लिये वर्षा के जल में जितनी गंदी नदियाँ होती हैं, वे सब समुद्र को मलिन करने को पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार तुझको अपवित्र बनाने वाला पूरा संसार मिल जायेगा लेकिन पवित्र बनाने वाला तू स्वयं है। समुद्र को मलिन करने वाली सैंकड़ों नदियाँ हैं लेकिन स्वयं को पवित्र करने के लिये तू स्वयं ही है। उसी तरह मेरी आत्मा को अपवित्र करने के लिये तो संसार में बहुत–सी वस्तुयें हैं लेकिन पवित्र करने वाला पदार्थ स्वयं के ज्ञान–वैराग्य की लहर ही आत्मा रूपी समुद्र को पवित्र और पावन बना पाती है। आत्मा के प्रभाव से ही आत्मा पवित्र होती है, बाहर के प्रभाव से आत्मा पवित्र नहीं होती। नहीं चाहिये बाहर का प्रभाव। नहीं चाहिये नदी का प्रभाव समुद्र को, बाहर की नदियों ने बहुत गंदा कर दिया है, शुद्ध करने के लिये समुद्र को भीतर में लहरें पैदा करनी पड़ेगी। मेरी चेतना अनादि काल से मलिन होती आ रही है, उस मलिनता को निर्मल करने के लिये ज्ञान और वैराग्य चाहिये। भक्ति–भाव की लहरें , तप–संयम की लहरें, अहिंसा–सत्य की लहरें, ये जैसे ही उतार पर आयेंगी, तभी निर्मलता आयेगी।

ध्यान देना ज्ञानी! आँख में कचरा बाहर से आ जायेगा लेकिन बाहर वाला आँख का कचरा नहीं निकाल पायेगा। **बोलो ज्ञानी! क्या आँख में कचरा टिकता है?** हाथ में कचरा लग जायें कोई चिंता नहीं है, सिर में कचरा लग जाये,चेहरे में कचरा लग जाये, लेकिन आँख में कचरा नहीं टिकता है। लेकिन फिर भी आँख में कचरा पहुँच गया है तो आँख ही उस कचरे को दूर करेगी, उसे स्वीकार नहीं करती है वह तत्काल दो आँसू बहायेंगी और पानी के साथ कचरे को बाहर निकाल देती है। **समुद्र, आँख और साधु ने कचरे को कब स्वीकार किया है?** कभी नहीं। उसी प्रकार आँख में कचरा आने के बाद आँख ने भीतर में नहीं रखा उसे किनारे हटा दिया है।

प्रिय आत्मन्!

हमारा बस यही कहना है, आत्मा, आत्मा को प्रभावित करती है, लेकिन मेरी आत्मा ने आज मेरी आत्मा को कितना प्रभावित किया? ये महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसने मुझे कितना प्रभावित किया? महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मेरी आत्मा कितनी प्रभावित हुई? और आज तक प्रभावित है। जब बरसात आयी थी तो वृक्ष ने कितना पानी पिया था? कि गर्मी में फल दे रहा है। उसी तरह मेरी आत्मा इतनी प्रभावित हो गई हैं। हर समय प्रकृष्ट भावों से भरी रहे, तब तो प्रभावना है। आपके प्रभाव से स्तोत्र सज्जनों के चित्त को हरेगा। मेरी आत्मा के प्रभाव से मेरा चित्त, मेरे चित्त को प्रसन्न कर रहा है कि नहीं? मेरे चित्त का एकक्षण पूर्व, अगले क्षण को प्रसन्नता दे रहा है कि नहीं? यदि मेरा मन भी मुझे प्रसन्न न करे तो कैसे विश्वास करूँ? कि मेरा मन तुम्हें प्रसन्न करेगा? जो भोजन मैंने बनाया है वह मुझे ही न रुचे तो अतिथि को क्या रुचेगा?

प्रिय आत्मन्!

मेरा उज्ज्वल मन, मेरी निर्मल आत्मा पहले स्वयं को प्रभावित करती है। जब आत्मा स्वयं प्रभावना से भर जाती है तब दूसरों को प्रभावित करती है। जैसे– मिट्टी का घड़ा है उसमें भरा हुआ पानी है। पहले वह पानी किसको प्रभावित करता है? पानी घड़े को या घड़ा पानी को प्रभावित करता है। पहले घड़ा सामान्य था जब पानी उसमें भरा तो पानी ने घड़े को या घड़े ने पानी को प्रभावित किया। पहले घड़ा गरम था, घड़े ने पानी अवश्य पिया है, घड़े ने पानी पिया है। किसने पिया है पानी? आप बताइये। घड़ा पानी पीता है? गीला होता है वही तो पीना है। पहले पानी घड़ा ने पिया, बाद में वही घड़ा बाहर में झलकने लगता है कि घड़ा इतना–इतना भरा है। क्यों झलकने लगा? प्रभावित हो चुका है पानी से, घड़े के भीतर पानी है किन्तु घड़ा प्रभावित कर रहा है। मेरे भीतर में वैराग्य है, तो मेरी आत्मा पवित्र हो रही है। घड़े के अंदर घड़े के स्पर्श से मालूम चलता है कि घड़े में शीतल पानी है या ऊष्ण पानी। शीतल जल और ऊष्ण जल ये स्पर्श से मालूम चलता है। कितना जल है? ये दर्शन से मालूम चलता है। और कैसा जल है? स्पर्श करने से जल की स्पर्शता मालूम पड़ जाती है क्योंकि जल ने घड़े को प्रभावित किया, घड़े ने जल को। जल का प्रभाव घड़े पर पड़ा है, घड़े का प्रभाव जल पर पड़ा है, पानी का प्रभाव मिट्टी पर पड़ा है और मिट्टी का प्रभाव पानी पर पड़ा है। जब पानी का प्रभाव पानी पर तो जिनवाणी का प्रभाव आत्मा पर क्यों नहीं पड़ सकता है?

जिनवाणी वह रिमझिम पानी, सदा सुहाता जो।
श्रद्धा लाता ज्ञान उगाता, चरित बढ़ाता जो।।

जिनवाणी का पानी, ऐसा रिमझिम–रिमझिम पानी है जो आत्मा में संयत उगाता है। वर्षाऋतु के रिमझिम पानी में जिस प्रकार किसान बीजों को उगाता है, अंकुरित करता है, पुष्पित करता है, फलित करता है, उसी तरह ये जिनवाणी गुणों को अंकुरित करती है, गुणों को वृद्धिंगत करती है, पुष्पित करती है, फलित करती है। जब भक्तामर स्तोत्र सामने हैं तो उसका प्रभाव अलग पड़ेगा, जब समयसार सामने रखते हैं,उसका प्रभाव अलग पड़ता है। प्रत्येक द्रव्य का अपना प्रभाव होता है। कोरे कागज का प्रभाव कोरा होता है और भरे कागज का प्रभाव भरा होता है। ध्यान देना प्रभाव दिखता नहीं है, अंदर का प्रभाव, द्रव्य का प्रभाव द्रव्य पर, मेरी आत्मद्रव्य का प्रभाव मेरी आत्मा पर। कितना आज तक आत्म द्रव्य ने मेरी आत्मा को प्रभावित किया? या नहीं। घड़े में जो जल गया, उस जल को किसने शीतल बनाया है?

अहो ज्ञानी!

वस्तुतः जल ने जल को शीतल बनाया है। ये निमित्त कथन है कि घड़े ने जल को शीतल बनाया है उपादान की अपेक्षा जल ही शीतल है इसलिये मेरी आत्मद्रव्य ने ही मेरी आत्मा को शुद्ध किया है।

जैसे– जल ही जल को शीतल बनाता है। शीतल जल में जल पहुँच गया, जल शीतल हो जायेगा। उष्णता संपर्क से आती है। **विभाव पर के संपर्क से आता है। स्वभाव निज के संपर्क से आता है।** क्या उष्णता जल का स्वभाव है? नहीं। यह विभाव तो संपर्क से आया है। चूल्हे पर जल रख दिया, उष्ण हो गया और शीतल करना हो तो कुछ नहीं करना, ऐसे ही रख दीजिये, किसने शीतल किया? किसी ने शीतल नहीं किया। शीतल करने के लिये कोई नहीं चाहिये, शुद्ध करने के लिये कोई नहीं चाहिये। अशुद्ध करने के लिये सब चाहिये। यदि जल को गरम करना है तो साधन चाहिये लेकिन जल को शीतल करना हो तो कोई भी साधन नहीं चाहिये क्योंकि शीतलता उसका स्वभाव है, हो जायेगा। मात्र जिन कारणों से गरम हो रहा था उन कारणों से उसे बचा लीजिये जल स्वभावतः शीतल हो जायेगा।

प्रत्यागूढस्य ज्ञानवता क्रियोपरमा सम्यग्चारित्रम्।।

स.सि.टी.

अर्थात् ज्ञानी पुरुष संसार के कारण से आत्मा को विरक्त कर रहा है। जिन कारणों से हमारी आत्मा संसार में भटक रही थी। आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज का जब दमोह में दर्शन हुआ तो आचार्यश्री ने कहा– **साधना में कुछ करना नहीं है, मात्र जिन कारणों से विराधना होती है उन कारणों से बचना ही साधना है।** जो हम साधना को बहुत बड़ी चीज समझ चुके हैं, बहुत कठिन और असंभव चीज समझ चुके हैं, कुछ भी नहीं है। **जिन कारणों से संसार बढ़ता है उन कारणों को हटाना ही तो साधना है।**

असुहादो विणिवित्ती।।

अर्थात् अशुभ भावों से निवृत्त होना। द्रव्य का प्रभाव द्रव्य पर, मेरी आत्मा अभी एक क्षण पहले इतनी पावन थी इसलिये अब इतनी पावन है। द्रव्य का द्रव्य पर प्रभाव, सातवें नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य नहीं बनता क्योंकि उसके आत्मा का द्रव्य उतना शुद्ध नहीं है जितना चाहिये। वहाँ का द्रव्य इतना पवित्र नहीं है कि मनुष्य गति में आ सके या जितना द्रव्य मनुष्य गति को चाहिये। यदि आत्मा पवित्र हो चुकी है तभी मनुष्य बन सकते हो लेकिन तीर्थंकर नहीं हो सकते। छठवें नरक से निकला हुआ जीव सम्यग्दर्शन पा सकता है लेकिन सकल संयम धारण नहीं कर सकता। पाँचवें नरक से निकला हुआ जीव सकल संयम धारण कर सकता है, लेकिन केवली नहीं हो सकता है। चौथे नरक से निकला हुआ जीव केवली हो सकता है किन्तु तीर्थंकर नहीं हो सकता। ये वहाँ के द्रव्य का प्रभाव है। पूर्व में बीज को जितना सींचा गया, भविष्य में बीज वैसा फलता है। मैं दूसरों से प्रभावित हो रहा हूँ लेकिन यह नहीं कि मेरी आत्मा ने स्वयं पर कितना प्रभाव डाला? तीसरे नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर बन सकता है क्योंकि उसका द्रव्य इतना पवित्र है कि उसका द्रव्य तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकता है।

पूर्वचर कारण, सहचर कारण, उत्तरचर कारणों का विचार करना अनिचार्य है।

आत्मद्रव्य का प्रभाव आत्मक्षेत्र पर पड़ता है। आत्मद्रव्य का प्रभाव मेरे आत्मक्षेत्र पर नियम से पड़ता है बाहर के क्षेत्र में पड़े या न पड़े लेकिन भीतर के क्षेत्र में पड़ा है या नहीं। मेरे द्रव्य की शुद्धि होगी तो मेरे मस्तिष्क से लेकर पाँव तक विशुद्धि होगी।

निरख–निरख पग ते धरे, पाले करूणा अंग।। गुरु स्तुति।।

जब आत्मद्रव्य में विशुद्धि जागी है तो द्रव्य की विशुद्धि ने आत्मा के प्रदेश को पावन किया है,

भावों को पावन किया। आँखों के प्रदेश भी पावन हुये हैं और मेरे पाँवों के प्रदेश भी पावन हुये हैं, इसलिये आँखें निरख–निरख कर दृष्टि से देख रही है और पाँव पोले–पोले पड़ रहे हैं। जिनके पाँव पोले नहीं पड़ते उनके ही पाँव में छाले होते हैं। यदि पाँव पोले–पोले रखना सीख जाओगे तो पाँव में छाले होना बंद हो जायेगा। जिनके पाँव पोले–पोले पड़ने लगते हैं उनके पाँव चार अंगुल ऊपर चलने लगते हैं। **जिनके पाँव जूते–चप्पल का त्याग कर पैदल विहार करने लगते हैं, उनके पाँव के नीचे स्वर्ण–कमलों की रचना भी होने लगती है।**

अभी तो इन कर कमलों को पद–कमलों की सेवा करने दीजिये फिर तो कमलों के लिये भी पद कमल छूने नहीं मिलेंगे। यह बात मैंने कही थी आचार्यश्री से कुण्डलपुर में सन् 2011? आचार्यश्री बोले– चाहता तो मैं भी यही हूँ। द्रव्य का प्रभाव क्षेत्र पर पड़ता है। यदि मेरी आत्मा शुद्ध है तो मेरी आत्मा का एक–एक प्रदेश शुद्ध होगा क्योंकि ज्ञान अखण्ड है, आत्मा अखण्ड है।

उदाहरण– मरकरी जल रही है। बताओ! कितने हिस्से में जल रही है? इस ट्यूबलाईट का प्रकाश कितने हिस्से में हैं? सम्पूर्ण हिस्से में है। मरकरी का प्रकाश उसके संपूर्ण तार में है, उसी तरह ज्ञान मेरे संपूर्ण असंख्यात प्रदेश में है। ज्ञान एक निश्चित अखण्ड आत्मा है। ट्यूबलाईट जलेगी तो पूरी जलेगी या फिर बिल्कुल नहीं जलेगी। अर्थ क्या हुआ? आत्मा में अखण्ड ज्ञान है, अविरल ज्ञान है, नख से लेकर शिर तक ज्ञान भरा पड़ा है। द्रव्य का प्रभाव क्षेत्र पर, क्षेत्र का प्रभाव काल पर, मेरी आत्मा पावन है, आत्मा का प्रदेश पावन है, इस काल को पावन करेगी यही काल है। काल यही है, जिस समय अच्छा कार्य कर लो वही काललब्धि है।

द्रव्य का प्रभाव भाव पर, मेरी आत्मद्रव्य का प्रभाव मेरे भावों पर पड़ता है। आत्मद्रव्य कहाँ से आया है? स्वर्ग से आया है, उसका प्रभाव वैसी आत्मा पर पड़ेगा। मेरी आत्मा नरक से आयी है, तो वैसी बनायेगी। बहुत कोशिश करने पर भी भाव उज्ज्वल क्यों नहीं बन रहे हैं?

तीर्थंकर महावीर स्वामी का समवशरण लगा, नेमिनाथ स्वामी का समवशरण लगा, उसी समवशरण में अनेक जीव महाव्रत धारण कर रहे हैं, कुछ जीव अणुव्रत धारण कर रहे हैं, कुछ जीव व्रत धारण कर रहे हैं लेकिन कुछ के व्रत के भाव ही नहीं हो रहे, क्यों नहीं हो रहे? निज द्रव्य इतना पवित्र नहीं है कि पर अपना प्रभाव दिखाये।

जैसे– बाजार में अनाज घुना हुआ हो तो भाव कम हो जाता है और घुना नहीं है तो भाव

उसका अपेक्षाकृत अधिक ही होता है। द्रव्य की गुणवत्ता से भाव बढ़ता है। द्रव्य की कमजोरी हो तो भाव घट जाता है। हमारा द्रव्य कहाँ से आया है? स्वर्ग से आया है कि नरक से।

स्तवन किसका है? आपका। मैं जरा–सा काम करता हूँ और कहता हूँ कि यह मेरा। लेकिन मानतुंग आचार्य कह रहे हैं? स्तवन आपका है, यह मेरा नहीं, सम्पूर्ण दोषों से रहित हैं इसमें कोई दोष नहीं है। जीवन में दोष नहीं, तो स्तवन में दोष कहाँ से आयेगा? जीव में दोष नहीं, अजीव में दोष कहाँ से आयेगा?

प्रिय आत्मन्!

जिसके जीवन में दोष नहीं उसके स्तवन में दोष नहीं होता है। जिसने जीवन में दोष निकाल दिये हैं, उसके स्तवन में से दोष निकल ही जाते हैं। अठारह दोषों से रहित स्वयंभू! आपका स्तवन दोषों से रहित होगा। स्तवन में कोई दोष नहीं है, ऐसा स्तोत्र तो दूर रहे, मैं उस स्तोत्र की चर्चा कर रहा हूँ उसकी महिमा नहीं गाऊँगा। क्या महिमा स्तोत्र की इतनी महान्? जो स्तोत्र है उसकी तो महिमा दूर रहे, चर्चा ही नहीं करो, उसके प्रभाव की तुम चर्चा मत पूछो क्या है? सम्पूर्ण दोषों से रहित जो आपका भक्तामर स्तोत्र उसका प्रभाव तो दूर रहे, आपकी सम्यक् प्रकार की कथा ही पर्याप्त है।

कथयति इति कथा।।

जो कही जाती है वह कथा है। किसकी कथा? स्त्री कथा, भक्त कथा, राज कथा, चोर कथा इनमें जीव पड़े हैं **इत्थि कहाए, अत्थ कहाए, भत्त कहाए, भत्त कहाए, वेर कहाए, परपासंड कहाए** इन कथाओं में जीव पड़े है।

सुदपरिचिदाणुभूदा, सव्वसविकामभोगबंधकहा।।

अर्थात् काम कथा, भोग कथा, बंध कथा इनमें से कोई कथा न करना। आपकी कथा ही सम्यक् कथा, शेष सब विकथा है। चाहे जन्म की हो, चाहे दीक्षा की हो, चाहे निर्वाण की हो पंचकल्याणक वर्णन की हो ये सब कथा है।

दुरितानि हन्ति ।

आपकी कथा असंख्या पापों को हरती है जग के पापों को हरण कर लेती है कथा ऐसी ही होती है। हमारी कथा में राग–द्वेष मिल जाता है **दुःश्रुति** हो जाता है राग–द्वेष का न होना ही **भक्तामर की सम्यक् कथा है।**

आज हम जो कहानी–किस्से सुनते हैं या पढ़ते हैं, उपन्यास या फिल्मी पत्र पढ़ते हैं या समाचार पत्र पढ़ते हैं, ये सब संकथा नहीं है। तीर्थंकर महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि से निःसृत स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित समवशरण रूप प्रेस से प्रकाशित सम्यक् कथा, सम्यक् आचार पत्र है, यह है आचार्य श्री मानतुंग महाराज के भक्तामर वाणी का प्रभाव। **जो पत्र आपको पात्र बना दे वही तो पत्र है।** पत्र पात्र न बना पायें , सुपात्र न बना पायें तो पत्र ही कैसा? पत्र पात्रता प्रदान करने वाला होना चाहिये।

एक के नहीं, दो के नहीं, जग के जीवों के दु ःखों को हरने वाली होती है कथा, संकथा चल रही है। संशय कथा नहीं है। कथा में संशय न हो, कथा में विपर्यय न हो, कथा में अनध्यवसाय न हो, ऐसी कथा जिसमें विपरीतता नहीं है सम्यक्दर्शनमयी कथा, सम्यक्ज्ञानमयी कथा, सम्यक्चारित्रमयी संकथा है। शब्द अपना अर्थ छोड़ेंगे, भाव छोड़ेंगे।

जलजं, जलजे, जलजानि।।

जैसे– सूर्य की किरण दूर होने पर भी अपनी प्रभा के द्वारा कमलों को प्रफुल्लित कर देती है कमलों को खिला देती है। उसी प्रकार आपके प्रभाव से, आपका भक्तामर स्तोत्र हृदय रूपी कमलों को खिला देता है। हे भगवन्! आप सिद्धालय में बैठे हो, आप विदेहक्षेत्र में बैठे हो, लेकिन मैं तो अपने घर रूपी मंदिर में आपकी पूजा कर लेता हूँ उसका प्रभाव दर्शन और ज्ञान ही सम्यक् दर्शन–ज्ञान है। जीवन भर के लौकिक ज्ञान की अपेक्षा एक क्षण का ज्ञान आत्मा को पावन बनाने वाला है, ऐसा जानना चाहिये।

भक्तामर के नवें श्लोक में कहते हैं सूर्य की तो बात ही क्या? जब उसकी प्रभा से ही सरोवर में कमल खिल जाते हैं ठीक वैसे ही आपकी स्तुति तो दूर रही, आपकी पवित्र कथा से ही प्राणियों के सभी पाप दूर हो जाते हैं।

*****

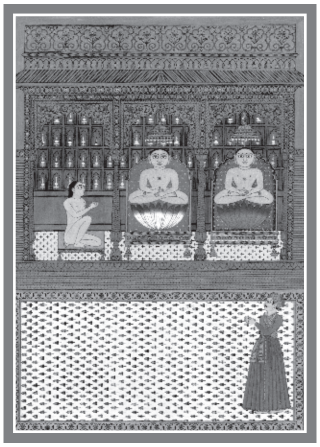

क्षमपद दायक भक्ति

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति।।10।।

अन्वयार्थ :

भुवन भूषण	– हे! तीन जगत के भूषण!	भूतनाथ	– हे! प्राणियों के स्वामिन्!
भूतैः	– वास्तविक	गुणैः	– गुणों के द्वारा
भवन्तम्	– आपकी	अभिष्टुवन्तः	– स्तुति करने वाले पुरुष
भुवि	– पृथ्वी पर	भवतः	– आपके
तुल्याः	– समान	भवन्ति	– हो जाते हैं
इति	– यह बात	अत्यद्भुतं	– अति आश्चर्य कारक
न	– नहीं है	वा ननु	– अथवा निश्चित ही
तेन	– उस स्वामी से	किम्	– क्या प्रयोजन है?
यः	– जो	इह	– इस लोक में
आश्रितम्	– अपने आश्रित पुरुष को	भूत्या	– सम्पत्ति के द्वारा
आत्मसमम्!	– अपने समान	न करोति	– नहीं करता है।

भावार्थ :

हे त्रिलोकभूषण! आपके स्तुति करने वाले पुरुष यदि आपके समान गुणों को प्राप्त कर लें तो कौन सा आश्चर्य है! कुछ भी नहीं। क्योंकि वह मालिक ही क्या जो सेवक को अपने समान न बना ले ?

उन्मत्त कूकर विष निवारक

भावानुवाद

भक्त तिहारे तेरे सम हों, कुछ आश्चर्य नहीं ।
शिष्यों को आचार्य बनायें, खुद आचार्य यहीं ।।
निर्धन भी धनपति सेवा से, ज्यों धनवान बने ।
भक्त आपको भजते-भजते, त्यों भगवान बने ।।10।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुध्दाणं झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्णम् स्वाहा।

दीप मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हज्जिनस्मरणजिनसम्भूताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

श्रेष्ठ उद्धारक

नात्यद्भुतं भूवन भूषण! भूतनाथ!
भूतै–र्गुणै–र्भुवि भवन्त–मभिष्टुवन्तः।।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म–समं करोति।।10।।

भावार्थ– आप में विद्यमान गुणों की तन्मयता से स्तुति करने वाले भव्य–पुरुष निःसंदेह आपके ही तुल्य प्रभुता को प्राप्त कर लेते हैं, आपके समान महान बन जाते हैं, इसमें आश्चर्य करने योग्य कुछ भी नहीं है। जगत में जो उदार चित्तवाले स्वामी होते हैं वे अपने आश्रित सेवकों को अपने जैसा सुखी–समृद्ध बना लें तो इसमें क्या आश्चर्य है? यदि वे अपने आश्रित सेवकों को अपना जैसा समृद्धशाली नहीं बना लेते तो उनके धनिक होने का लाभ ही क्या? अर्थात् आपके गुणों का स्तवन करके मैं भी आपके समान कर्मक्षय कर सकता हूँ और आपके समान सिद्ध तीर्थंकर बन सकता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

हे जगभूषण! प्राणियों के स्वामी! आपके यथार्थ गुणों की भक्ति करने वाले इस पृथ्वी पर आप जैसे ही हो जाते हैं, इसमें कोई अचरज नहीं। सच्चा मालिक वही है, जो अपने आश्रित को स्वयं अपने जैसा बना लेता है।

प्रिय आत्मन्!

प्रभाव दो प्रकार का होता है–

1. स्वभाव प्रभाव

2. विभाव प्रभाव

विभाव प्रभाव क्षणिक होता है, स्वभाव प्रभाव शाश्वत होता है। स्वभाव प्रभाव उपादेय होता है, विभाव प्रभाव हेय होता है। स्वभाव प्रभाव आत्मा का धर्म होता है, विभाव प्रभाव आत्मा का विकार होता है। स्वभाव प्रभाव आत्मा को सुख देता है, विभाव प्रभाव आत्मा को दुःख देता है। स्वभाव प्रभाव आत्मा की निधि है, विभाव प्रभाव आत्मा की दरिद्रता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रिय आत्मन्!

स्वभाव–विभाव दोनों का प्रभाव जीव और पुद्गल पर पड़ता है। जिनके पास जो होता है उसका प्रभाव उस पर पड़ता है। आत्मा के अनंत गुण स्वभाव प्रभाव वाले हैं, आत्मा के अनंत दोष विभाव परिणाम वाले हैं। दोषों का नाम विभाव है, गुणों का नाम स्वभाव है।

प्रिय आत्मन्!

मेरे जीवन पर जब दूरवर्ती सूर्यादि नवग्रह का प्रभाव पड़ता है तब फिर निकटवर्ती पारिवारिक बन्धु–बांधवों का प्रभाव तो पड़ेगा ही। सूर्य का प्रभाव माटी पर पड़ता है, पानी पर पड़ता है, मेरे ऊपर भी पड़ता है। अपने निकटवर्ती रहने वाले बन्धु–बांधवों, पारिवारिक जनों का भी प्रभाव पड़ता है। लेकिन ध्यान रखो। दुष्प्रभाव से बचो और सुप्रभाव को पाओ। दुनियाँ में कहीं जाना आसान है। किन्तु वहाँ के प्रभाव से अपने आपको बचा लेना कठिन है। इसलिये स्वप्रभाव से प्रभावित होना। स्वाभाविक प्रभाव से प्रभावित होना और वैभाविक प्रभाव से अप्रभावित होना। वैभाविक प्रभाव अप्रभावना करता है, स्वभाविक प्रभाव प्रभावना करता है। **आत्मा की भावना से उत्पन्न होने वाला प्रभाव ही प्रकृष्ट प्रभाव है।** वैभाविक प्रभाव क्रोध, मान, माया लोभ है इसलिये जो भी कार्य करना है, बड़ी समझदारी से, स्नेह से, वात्सल्य से, प्रेम से, मधुरता से करना।

तुम्हारी शान घट जाती, कि रूतबा घट गया होता।
जो गुस्से में कहा तुमने, वही हँसकर कहा होता।।

प्रिय आत्मन्!

तुम्हारी शान घट जाती या तुम्हारा महत्त्व घट जाता। वैभाविक परिणति में न जाकर स्वाभाविक परिणति में कहने की चेष्टा करो। विभाव में मत जाओ विभाव में जाओगे तो स्वभाव में नहीं आ पाओगे। विभाव में जाओगे तो भव–भव में जाओगे। बिना प्रभाव के प्रभावना होती कहाँ है? वस्तु का भाव ही स्वभाव है। स्वभाव लाना नहीं पड़ता है प्रकट होता है। विभाव को लाना पड़ता है।

प्रिय आत्मन्!

वस्तु स्वतंत्रता जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यहाँ स्वाधीनता का साम्राज्य है। जैनधर्म में परम स्वतंत्रता प्रदान की गई है। यहाँ स्वतंत्र जीने की कला दी गई है और अन्य दर्शनों में, ऐसा नहीं है।

जैन दर्शन कहता है– स्वाश्रित आत्मा का आलम्बन लेना स्वावलम्बन है और शरीर का आलम्बन

लेना परावलम्बन है। आत्मा की अधीनता स्वाधीनता है और शरीर की अधीनता पराधीनता है। ज्ञानियो! आत्मा के अधीन होना स्वाधीन चर्या है और शरीर के अधीन होना पराधीन चर्या है। मैंने पराधीन किसको जाना है? शास्त्र के अधीन होना पराधीन नहीं है, अपने शरीर, अपने विकारों के अधीन होना पराधीनता है और आत्मा के अधीन हो जाना स्वाधीनता है। जिनेन्द्र के अधीन हो जाना स्वाधीन है और इंद्रिय के अधीन हो जाना पराधीन है। प्रभाव स्वभाव का है कि विभाव का। प्रभाव तो सभी डालते हैं संसार की प्रत्येक वस्तु प्रभाव डालती है प्रत्येक वस्तु में प्रभाव समाया है।

द्रव्य है तो क्षेत्र भी है, उसका काल भी है, भाव भी है। जैसे– दो सौ पचास ग्राम का पका आम है। उसमें से आम रस कितने ग्राम में है? सौ ग्राम में? डेढ़ सौ ग्राम में? या दो सौ ग्राम में? कितने ग्राम आम रस है? दो सौ पचास ग्राम ही रस है। छिल्का को देखकर ही तो जाना आम है। रूप कितना है? दो सौ पचास ग्राम ही रूप है। रूप को छोड़कर रस नहीं है रस को छोड़कर रूप नहीं है। रस है तो रूप होता है। रस नहीं होगा तो रूप कहाँ से आयेगा? रूप, रस,गंध दो सौ पचास ग्राम में रस कितने ग्राम है? दो सौ पचास ग्राम ही रस है। गंध कितने ग्राम है? दो सौ पचास ग्राम ही गंध है। माना एक लीटर दूध है। कितने लीटर दूध में रस है? एक लीटर दूध में रस है। रूप कितना है? एक लीटर दूध में, गंध कितने में, है? एक लीटर दूध में । जिसमें रूप है उसी में गंध है उसी में वर्ण। जब–जब रूप की अपेक्षा कथन किया, रूप भी एक लीटर में है। रस का कथन किया तो रस भी एक लीटर में है। रस के साथ रूप, गंध, स्पर्श है, लेकिन दूध चार लीटर नहीं हुआ, एक लीटर ही है। इसी तरह आत्मा द्रव्य है, तो द्रव्य स्वद्रव्य है, क्षेत्र भी है, काल भी है और भाव भी है। जब प्रत्येक वस्तु का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है तो ध्यान देना भाव का प्रभाव तो पड़ेगा ही। वस्तु का प्रभाव उसका गुण है।

वत्थु सहावो धम्मो।।

प्रिय आत्मन्!

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अग्नि का धर्म उष्णता है। जल का धर्म शीतलता है पुष्प की सुगंधी धर्म है। वही उसका धर्म है। स्वभाव ही तो धर्म है वह न हो तो क्या होगा?

प्रिय आत्मन्!

प्रत्येक द्रव्य के पास उसका स्वभाव–विभाव गुण है। आप स्वभाव से प्रभावित हो रहे हैं या

विभाव से। इसका निर्णय करना आवश्यक है। जिसके पास इन दो तत्त्वों का निर्णय नहीं होगा तो वह भटकता रहेगा। आज दुनिया भटकी है, इस निर्णय के न होने के प्रभाव से। निर्णय के अभाव में स्वभाव से प्रभावित हो रहा हूँ कि विभाव से प्रभावित हो रहा हूँ। वचनों में कहना बहुत आसान है, जीवन में उतारना बहुत कठिन है। मैं जिससे प्रभावित हो रहा हूँ उसके पास स्वभाव कितना है? मैं जिससे प्रभावित हो रहा हूँ उसके पास विभाव कितना है? जिसके पास जो होता है वह उसी को वही तो देता है। स्वभाव होगा स्वभाव देगा, विभाव होगा तो विभाव देगा।

प्रिय आत्मन्!

ऊपर से देखकर भीतर का निर्णय नहीं होता। काली गाय सफेद दूध देती है। गुणकारी दूध देती है, सफेद तो सफेद देती ही है काली भी सफेद देती है। तात्पर्य– आप बाहर से प्रभावित मत हो भीतर से हो। स्वभाव से प्रभावित हो, न कि विभाव से। आज वर्तमान युग में हम जिसे देख रहे हैं, जिसे सुन रहे हैं, जिसके समीप में बैठे हैं, उसके पास कितना स्वभाव है? इस बात को समझ जाओगे तो आपकी टी.वी बंद हो जायेगी, आपकी फिल्में बंद हो जायेगी, आपके सीरियल बंद हो जायेंगे। मैं विभाव को क्यों देखूँ? विभाव को तो अनादि से देखा है मेरा मन वहीं दौड़ के जाता है। मुझे स्वभाव की ओर देखना है। दूरदर्शन विभाव का दर्शन करा रहा है कि स्वभाव का दर्शन करा रहा है। जो दर्शन विभाव का दर्शन कराये, उसका दर्शन कभी नहीं करना। जो दर्शन स्वभाव का दर्शन कराये, उसका दर्शन करना। अपने यहाँ देवदर्शन का महत्त्व है, दूरदर्शन का महत्त्व नहीं है। देवदर्शन स्वभाव का दर्शन कराता है, दूरदर्शन विभाव का दर्शन कराता है। यदि हम विभाव के दर्शन करेंगे तो विभाव का प्रभाव मुझ पर पड़ेगा और स्वभाव के दर्शन करोगे तो स्वभाव का प्रभाव पड़ेगा। देव का दर्शन करेंगे तो स्वभाव का दर्शन होगा। स्वभाव का प्रभाव मुझ पर पड़ेगा जिसने विभाव पाया है उसकी तस्वीर भी विभाव का दर्शन कराती है। जिसने स्वभाव को पाया है उसकी तस्वीर स्वभाव का दर्शन कराती है। यहाँ पर चित्र अनावरण किया महावीर स्वामी का। **चित्र में भी चारित्र का दर्शन हो गया।** स्वभाव को प्रकट किया है तो आप स्वभाव का दर्शन कर लेते हैं। जब चित्र में स्वभाविकता है तो चारित्र में स्वाभाविकता है। चित्र में स्वाभाविकता है तो दर्शन करने से मन में स्वाभाविकता आ जाती है। स्वाभाविक दृष्टि, परभाविक दर्शन कौन–से दर्शन करना है? परभाविक दर्शन करते–करते

अनंत काल बीत गया, निज को देखना स्वभाव का दर्शन है निज आत्मा को छोड़कर परद्रव्य का दर्शन करना परभाविक दर्शन है।

जीवादि बहि तच्चं हेयं।

प्रिय आत्मन्!

जीव द्रव्य हेय है कि उपादेय है? जीव द्रव्य पाने योग्य है कि छोड़ने योग्य है? क्या पाने योग्य है? क्या न पाने योग्य है? निज का जीव पाने योग्य है पर का जीव पाने योग्य नहीं है। यदि पर का जीव पाने योग्य होता तो मैं एक हूँ, ऐसी बात नहीं आती।

प्रिय आत्मन्!

जब निज को पाना है उस क्षण में दूसरा जीव भी हेय है। यदि हम दूसरे जीव का भी विचार करते हैं तो निज को पा नहीं सकते हैं। स्वभाव दर्शन के लिये यहाँ तो ये कहा गया है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु भी पर है। उनको भी त्यागने की बात करते हैं। तू तो ऐसे जघन्य को देख रहा है, जघन्य को देखने वाला जघन्य बनता है और परम को देखने वाला परमेष्ठी बनतता है। जघन्य को देखने वाला नारकी बनता है इसलिये विभाव का दर्शन नहीं करना। विभाव को पड़ोगे विभाव में पड़ोगे। स्वभाव को पढ़ोगे, स्वभाव में पड़ोगे। समयसार, नियमसार, भक्तामर पढ़ोगे, स्वभाव का पढ़ोगे। नई दुनिया, भास्कर, समाचार–जगत को पढ़ोगे, विभाव में पढ़ोगे।

प्रिय आत्मन्!

विभाव को नहीं पढ़ना, स्वभाव को पढ़ के देखो, एक सज्जन कहते हैं– मैं इकतीस मई को रिटायर्ड हो रहा हूँ किसी ने कहा– घर में बैठकर क्या करोगे? फिर से नियुक्ति कर लो। मैंने कहा– बंधन से मुक्त हुआ, बुढ़ापे में फिर वही बात कर रहा है। सर्विस छूट चुकी है सन्यास आश्रम प्रारंभ हो चुका। अब क्या करूँ? मैंने कहा– जितने समय तू वहाँ समय देता था उतना समय घर में बैठकर स्वाध्याय को समय देने लगो। जिनेन्द्र वर्णीजी एक ऐसा नाम है जो चौबीस साल की उम्र में वकील हो गये और दो–तीन साल वकील रहे। वकील होने के बाद उनके हाथ में तत्त्वार्थ सूत्र लग गया। तत्त्वार्थ सूत्र को उन्होंने इतनी अच्छी तरह से समझा कि तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ते ही उन्होंने वकालत छोड़ दी, त्याग पत्र दे दिया। मैंने जीवन में आज तक इतनी महानता नहीं पढ़ी। पहली किताब में जीवन

की इतनी महानता पढ़ रहा हूँ। ऐसी कितनी महान किताबें हैं आपके जैनधर्म में ? जैनधर्म को पढ़ने के लिये वकालत छोड़ रहा हूँ। सौलह साल तक निरंतर अध्ययन करने के बाद जिनेन्द्र वर्णीजी ने यह अनुपम कृति दी है जिसका नाम **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष** है। जैनेन्द्र सिद्धान्त का अध्ययन करने पर जैनधर्म का सर्वांगीण अध्ययन हो जाता है। जैनधर्म का सम्पूर्ण समावेश जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष में है। आप कोई भी विषय लीजिये ऐसा कोई भी विषय नहीं होगा जैनधर्म का, जो जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष में न मिले। सम्पूर्ण विषयों पर अच्छे–अच्छे निबंध मिल जायेंगे। अहिंसा, क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिन्चन, ब्रह्मचर्य आदि, सम्पूर्ण विषय इस महान ग्रन्थ में सम्मिलित है। यह ग्रन्थ वर्णीजी ने सोलह वर्ष के अथक परिश्रम से तैयार किया है।

प्रिय आत्मन्!

एक किडनी पर जीवित रहने वाले वर्णीजी इतना महान कार्य कर गये। तात्पर्य यह है कि यदि सेवाकाल का समय पूरा हो जाये तो दुबारा नियुक्ति नहीं करना। तत्काल सन्यास आश्रम, स्वाध्याय में प्रवेश कर जाओ, साधना में प्रवेश कर जाओ।

प्रिय आत्मन्!

आज तक तूने पाप में समय बिताया है, कल से पुण्य में समय बीतेगा। आज तक पर की चाह में समय बीता है, आज से आत्मा की चाहना में समय बीतेगा। ध्यान रखना **किंकर से कूकर भला।** सेवा करने वाले की अपेक्षा श्वान (कुत्ता) को भला कहा गया है। इसलिये पर की सेवा छोड़कर स्वयं सेवा करो। आत्मा की सेवा करना, फिर कहना महाराजश्री आप सम्यक् सलाह दे रहे हैं , क्योंकि मैं आपका गुरू हूँ, सलाह सम्यक् ही दूँगा। जैसे– धनवान् की सेवा करने वाला सेवक स्वामी की कृपा से धनवान् बन जाता है। विश्व में जितने भी दर्शन हैं उन दर्शनों में मात्र भक्त बने रहने की बात कही गयी है लेकिन जैनदर्शन तो कहता है– भक्त से भगवान बनते हैं प्रत्येक जीव को ईश्वर बनने का अधिकार है यहाँ प्रत्येक आत्मा में भगवत्ता है।

उदाहरण– बीज में वृक्ष है, ईधन में आग है, दूध में घी है, पाषाण में प्रतिमा है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा में परमात्मा है। ये मार्ग जैनदर्शन ने दिया है।

वह स्वामी–स्वामी कैसा? करे नहीं अपने जैसा।
कैसा उसका धन–पैसा?, अगर गरीब निराश्रय–सा।।

प्रिय आत्मन्!

जो अपने नौकर को अपने समान न करे उस स्वामी से क्या प्रयोजन? सेठ महावीर के घर में दीवाली मनती है तो मालिक महावीर की मिठाई उसके सेवक के घर जाती है। यदि मालिक सज्जन होगा तो वह ध्यान रखेगा। यदि घर में मिठाई खायेंगे तो घर में रहने वाले जानवरों को भी मिठाई खिलाई जाती है, यह सज्जनता है और कुछ नहीं है। वह कैसा स्वामी? जो अपने नौकर को अपने समान न बना ले। वह कैसा गुरु ? जो अपने शिष्य को अपने जैसा न बना ले। यदि आप हमारे पास रहे हो तो हमारे जैसे बन जाओगे और अपने पास रह जाओगे तो सिद्ध भगवान बन जाओगे।

प्रिय आत्मन्!

गुरु के पास रहोगे, गुरु अपने जैसा बना लेंगे। ध्याना रखना– केवल गुरु के पास रहना नहीं सीखना है, अपितु गुरु से स्वयं के पास रहना भी सीखना है अर्थात् अपनी आत्मा के पास रहना भी सीखना है। अपने पास कैसा रहा जाता है? इस विषय में आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं–

वंदे तद्गुण लब्धये।।

प्रिय आत्मन्!

गुणवानों की स्तुति यह बताती है कि आपमें गुणों की चाहत है इसलिये आप गुणों को गा रहे हैं किसी भी दुकान पर आप जाते हैं, मेडीकल पर जाते हैं, पर्ची दिखा देते हैं यह दवा मिलेगी क्या? उसी तरह मैं जिन गुणों को गा रहा हूँ उन गुणों की चाहत मुझे है। गुण भी चाहते हैं जो मुझे चाहेगा मैं उसके पास रहूँगा। जो मुझे नहीं चाहेंगे मैं उनके पास नहीं रहूँगा। गुण की बात करते हो, नन्हा–सा शिशु भी जानता है कि जो मुझे चाहता है मैं उसी के पास जाऊँगा।

प्रिय आत्मन्!

चाहने वाले के पास सब पहुँच जाते हैं। तुम गुणों को चाहते हो गुण तुम्हें चाहते हैं। **गुणों का गुणगान गुणवान् बनाता है।** क्योंकि वह देख रहा है, तुम्हें इसकी चाहत है, मेरा आदर कहाँ होगा? मेरा सम्मान कहाँ होगा? प्रत्येक गुण सम्मान चाहता है, प्रत्येक गुण आदर चाहता है जहाँ आदर सम्मान मिलता है, वह गुण वहाँ ठहर जाता है। और जिसे चाहत ही नहीं, वह क्या करेगा? जिसे

ज्ञान का आदर नहीं है, वह विद्वान का आदर क्या करेगा? जिसे साधना की चाहत नहीं, वह साधु का आदर क्या करेगा? जिसे धन की चाहत नहीं, वह सेठ का आदर क्या करेगा? जिसे प्रकाश की चाहत नहीं, वह दीपक का आदर क्या करेगा? जिसे ज्ञान की चाहत नहीं, वह पुस्तक का आदर क्या करेगा? जिसे नींद की चाहत नहीं, वह बिस्तर का आदर क्या करेगा? जिसे प्यास की चाहत नहीं, वह पानी का आदर क्या करेगा? जिसे भूख की चाहत नहीं, वह भोजन का आदर क्या करेगा?

प्रिय आत्मन्!

आदर तो चाहत के बाद होता है, चाहत ही नहीं तो आदर क्या होगा? मैं गुणों की चाह रहा हूँ, तो केवलज्ञान को चाहता हूँ। नमस्कार वहीं होता है, जहाँ उनसे गुणों की चाहत होती है। गणित का विद्यार्थी, इतिहास के शिक्षक के पास नहीं जाता है, गणित के शिक्षक के पास जाता है। विज्ञान का विद्यार्थी, विज्ञान के शिक्षक के पास जाता है। जिसको जो कला पाने की चाहत है, वह उस कला मर्मज्ञ के पास जा रहा है। गणित वाले विद्यार्थी को गणित वाले शिक्षक परिश्रम करके गणित सिखाते हैं। उसी प्रकार मैं केवलज्ञान को नमस्कार करता हूँ। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पूजा करता हूँ अर्थात् मैं सम्यक् दर्शन को चाहता हूँ। ज्ञान, चारित्र को चाहता हूँ, जब तुम बेटा को चाहते हो, बेटा तुम्हारे पास आ जाता है। उसी तरह हम गुणगान के माध्यम से प्रभु को बुला रहे हैं। **गुरु प्रभु बनने की कला सिखाते हैं।** कभी–कभी एक अच्छा सेठ अपने नौकर की ईमानदारी, कर्त्तव्य परायणता से प्रसन्न होकर कहता है– ये वाला व्यापार तुम सम्हाल लो, तुम्हारा परिवार और तुम्हारा जीवन सुख से चलेगा। प्रभु! हम आपके गुणों को क्या गाते ही रहेंगे? नहीं; आपके गुणों को गाने वाले आपके समान हो जाते हैं, धनवालों की सेवा करने वाले धनवान हो जाते हैं। मैंने ऐसे–ऐसे अनेक व्यक्ति देखे हैं।

शीलचन्द्रजी बीना निवासी, इनका सम्पूर्ण जीवन प्रेरणास्पद है। आचार्य विमलसागरजी महाराज का बीना (म.प्र.) से विहार हुआ। एक नन्हा–सा बालक चौदह साल का, जिसके माता–पिता का स्वर्गवास हो चुका है, वह नन्हा–सा बालक, कमण्डलु लेकर चल दिये, विहार कराने के लिये। रास्ते में विमलसागरजी महाराज ने पूछा– बेटा! तेरे पिता का नाम क्या है? उसके आँखों से आँसू झलक पड़े। आचार्यश्री ने पूछा– तुम्हारी माँ का नाम क्या है? पुनः आचार्य ने कहा– बेटे! कष्ट में हो क्या? नहीं गुरुदेव! आप ही माँ हैं, आप ही पिता हैं। मेरे जन्मदाता माता–पिता का स्वर्गवास हो गया है।

आचार्य विमलसागरजी महाराज बोले– बेटे! परिवार में और कोई भी है। हाँ! चार बहिनें हैं। आचार्यश्री ने पुनः कहा– क्या करते हो? अभी तो चाय–पान का ठेला लगाता हूँ, बेटे! तुम एक काम करोगे। देखो! जब तुम कहते ही हो कि मैं ही तुम्हारा माता–पिता हूँ, तो तुम एक काम करो, मेरी एक बात मान लो। बोलिये भगवन्! क्या बात है? बेटा! तुम भगवान की पूजा करने के बाद ही दुकान खोलना। **कोई भी काम करो, पहले भगवान् की पूजा करके जाना।** आचार्यश्री के इस मंगल वाक्य को शिरोधार्य करके, उसने अपने नवीन जीवन का प्रारंभ मानकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा का नियम दृढ़ता से निभाना प्रारंभ कर दिया। उसकी श्रद्धा–भक्ति ने उसे सच्चे देव–शास्त्र गुरु के प्रति दृढ़ आस्थावान बनाया और एक नयी मिसाल खड़ी की। बीना नगर में जितने भी साधु आते सभी की पूजा–वंदना करना, आहारदान देना आदि, उनके जीवन के परम और प्रथम कार्य बन गये। उस व्यक्ति के परिवार में जितने सदस्य हैं परम सुखी हैं। पाँच-छः जगह व्यापार है। यहाँ तक कि पहले व्यापार किया, आज स्वयं माल गाडियाँ जाने लगी इतना प्रभाव पड़ा। व्यापार प्रारम्भ किया बारदाने का। बारदाने में आग लग गई। पच्चीस हजार का पूरा माल जलकर राख हो गया। उधार लेकर आये थे, चुकाये कैसे? पहले क्या करते थे, नमक की बोरियाँ बेचते थे, बारदाने के रूप में एक बारदाने वाला आया कोई मेरा बारदाना खरीद लेगा क्योंकि गाड़ी खराब हो गयी बीना के पास। अब क्या करे? माल यहीं उतारना है कोई खरीद लेगा क्या? कोई नहीं खरीदता है कोई नहीं बेचता है। बोरा उठाना कोई अच्छा नहीं मानता है, लेकिन हाँ! एक है, वो बारदाना में नमक की बोरियाँ बेचता है, शायद वह खरीद ले। फिर उसके बाद वह व्यापारी स्वयं चलकर उसके घर गया। उसने पूरा माल उधार दे दिया और घर तो अच्छा खासा नहीं था, माल घर में रख लिया और अचानक चूल्हे से निकली हुई आग ने माल को भी जला दिया और घर को भी। लेकिन जिनपूजा और स्वाध्याय के नियम को कभी विस्मृत नहीं होने दिया। शाम को स्वाध्याय सुबह पूजा। आठ–दस दिन हो गये। सोचता है व्यापारी का पैसा चुकाना है और यहां गाँव से फोन पहुँचने लगे व्यापारी के पास, जिसे माल दे गये थे, उसके मकान में आग लग गयी है। अब तुम्हारा पैसा वह नहीं दे पायेगा। व्यापारी बड़ा दानवीर था। उसने आकर कहा– तुम चिंता क्यों करते हो? सोचो! ये माल हमारे घर में रखा होता और हमारे ही घर में आग लग गई होती तब क्या स्थिति होती? मान के चलिये ये माल मैंने आपमे मकान में किराये से रखा, आग लग गई तो क्या हुआ? आपको विकल्प नहीं करना। तब भी उन्होंने कहा– ये आपकी उदारता है, मैं आपका पैसा पहले चुकाऊँगा। जिस दिन आपका पैसा चुक

जायेगा मैं उसी दिन माल लूँगा। ऐसा नहीं। ऐसा मत कहिये तुम्हें मैं और माल भेजता हूँ और अच्छी गुणवत्ता का माल भेजता हूँ। आप अपना व्यापार चालू रखो। ये समझो कि मैंने वो माल आपको दिया ही नहीं। आपका मकान मेरा मकान,क्या अलग–अलग है? हम और आप क्या अलग–अलग हैं। मैं आपका हूँ उसने एक ट्रक माल और भेज दिया। **तात्पर्य– व्यक्ति का पुण्य सभी जगह से साथ देता है।** आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज ने एक नियम दिया था, आज वह व्यक्ति जगह–जगह सिद्धचक्र विधान कराता है। सम्मेदशिखर पर अठत्तर बार सिद्धचक्र कर चुका है। प्रतिवर्ष पाँच सौ व्यक्ति को लेकर जाता है सम्मेदशिखरजी। पंच–कल्याणक करा चुका है, कल्पद्रुम करा चुका है। संप्रति सतना नगर में साधु सानिध्य में श्रेष्ठ समाधि हो गयी।

प्रिय आत्मन्!

जिनेन्द्र भगवान की पूजा–भक्ति का एक कण भी सौधर्मेन्द्र बना सकता है। तात्पर्य यह है कि जब जिनेन्द्र देव का समवशरण लग सकता है तो जिनेन्द्र भगवान के भक्त के पास कुछ कमी रहेगी क्या? पूरी श्रद्धा, लगन के साथ, तन्मयता के साथ, भक्ति करना सीखें। जिनेन्द्र भगवान अपने समान भक्त को बना देते हैं, धन नहीं लुटाते हैं।

जैसे– उनके अंदर अनंतदर्शन, ज्ञान, वीर्य, सुख हैं। वैसे ही दर्शन करने वाली आत्मा, गुणगान वाली आत्मा, जिनेन्द्र भगवान के समान हो जाता है। आदिनाथ को आहार दान दिया, वह आत्मा मुनि बनकर मोक्ष चली गई। **तीर्थंकर को आहार देने वाली आत्मा उसी भव या तीसरे भव में मोक्ष चली जाती है। तीर्थंकर को जन्म देने वाली माँ तीसरे भव से मोक्ष जाती है। तीर्थंकर को जन्म देने वाला पिता तीसरे भव से मोक्ष चला जाता है।** जिनके गुण गाआगे उनके समान हो जाओगे। जिनके गीत गाओगे उनके मीत हो जाओगे।

प्रिय आत्मन्!

अरहंतों के गुण अरहंत बनाते हैं , सिद्धों के गुण सिद्ध बनाते हैं , परमेष्ठियों के गुण परमेष्ठी बनाते हैं। आज हम साधु की भक्ति करेंगे तो साधु बनेंगे। एक उद्देश्य होना चाहिये प्रभु! आप जैसे कब बनूँ? वह दिन कब आये जब मैं आप जैसा बनूँ?

*****

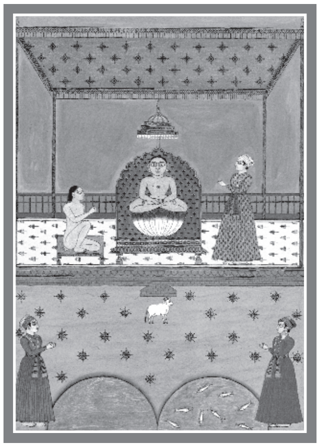

निर्निमेष दर्शनीय स्वरूप

दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत्॥11॥

अन्वयार्थ :

अनिमेष	– बिना पलक झपकाये	विलोकनीयम्	– देखने योग्य
भवन्तम्	– आपको	दृष्ट्वा	– देखकर
जनस्य	– मनुष्य के	चक्षुः	– नेत्र
अन्यत्र	– और कहीं पर	तोषम्	– संतोष को
न उपयाति	– नहीं पाते हैं	शशिकरद्युति	– चन्द्रमा के समान काति वाले
दुग्ध-सिन्धोः	– क्षीर सागर के	पयः	– जलको
पीत्वा	– पीकर	कः	– कौन मनुष्य
जलनिधेः	– लवण समुद्र के	क्षारम्	– खारे
जलम्	– पानी को	रसितुम्	– चखने के लिये
इच्छेत्	– इच्छा करेगा।		

भावार्थ :

हे वीतरागी देव! आपके दर्शन करके जो आत्म सुख मिलता है वह अन्य देवी-देवताओं के दिखने पर नहीं, सच है क्षीर सागर के मधुर जलपान करने पर जो सुख मिलता है वह लवण समुद्र के खारे पानी पीने पर नहीं ?

आकर्षण बढ़ाने वाला

भावानुवाद

क्षीर सिन्धु का क्षीर पिया हो, मधुर–मिठैया सा।
वह क्या खरा नीर पियेगा, लवण समुद्रों का ।।
जिसने देखा वीतरागमय, यह स्वरूप तेरा।
उसे कहाँ सन्तोष मिलेगा, जो जिनपद चेरा ।।11।।

ऋद्धि मंत्र : ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुध्दाणं झ्रौं–झ्रौं नमः स्वाहा।

जाप्य मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा ।

दीप मंत्र : ॐह्रीं सकलतुष्टिपुष्टिकराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय दीपं समर्पयामि स्वाहा।

परम दर्शनीय

दृष्ट्वा भवन्त–मनिमेष–विलोकनीयं,
नान्यत्र तोष–मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर–द्युति–दुग्ध–सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेः रसितुं कः इच्छेत्? ॥11॥

भावार्थ– हे परम दर्शनीय जिनेन्द्र देव! आप इतने अधिक लावण्यमयी हैं कि निरन्तर टकटकी लगाकर टिमकार रहित नेत्रों से दर्शन करने के योग्य हैं अर्थात् जो पुरुष आपको एक बार भी अच्छी तरह देख लेता है, उसकी आँखों में आप ऐसे समा जाते हैं, कि वह फिर अन्य किसी देव को देखकर संतुष्ट नहीं होता। जिस प्रकार चन्द्रमा की शुभ्र किरणों की कान्ति के समान धवल क्षीर सागर का मधुर जल पी चुकने के पश्चात् ऐसा कौन पुरुष होगा जो लवण समुद्र के खारे पानी को चखने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

प्रिय आत्मन्!

भक्तामर स्तोत्र की पावन मंदाकिनी में प्रवाहमान निर्मल चित्त,चेतना को उज्ज्वल, विमल, धवल, पावन, पवित्र बनाता हुआ अकाट्य सम्यक्दर्शन की उस भूमिका को प्रदान करता है, जहाँ नि:शंकता और निर्भयता ये दो आत्मीय गुण जागृत हो उठते हैं। तब आत्मा इस प्रकार दृढ़ आस्था बना लेता है।

इदमेवे दृशमेव, तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गे संशयाः रुचिः॥11॥

रत्नकरण्डकश्रावकाचार

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भयो तेण।

कुंदकुंद भगवान लिखते हैं– सम्यक्दृष्टि जीव निशंक,निर्भय होता है। उसकी अविचल धारणा होती है। वह घड़ी के पेंडुलम की तरह संशय के झूले में नहीं झूलता है। वह सम्यक्तव के झूले में झूलता है, संशय के झूले में नहीं। श्रद्धा के झूले में झूलता है, अश्रद्धा के झूले में नहीं झूलता है। संसार में पंचम काल में यह स्थिति है कि हमारे सामने देव, अदेव, सुदेव, कुदेव, वीतराग देव, सराग देव हैं। यह मन कहाँ टिके? यह माथा कहाँ टिके? ये नयन कहाँ टिकें?

प्रिय आत्मन्!

परम दर्शनीय वीतराग देव! अनिमेष विलोकनीय आप ही देखने योग्य हैं। आपको देखते समय कहीं मेरी पलक न झपक जायें। आपके दर्शन में और पलकों के झपकने से व्यवधान पड़ता है, इसलिये हे प्रभु! जिस समय मैं आपको देखूँ, उस समय मेरी पलकें न झपक जायें। आप इस तरह देखने योग्य नहीं है कि पलकें झपकाना पड़ें, आँखें बंद करना पड़ें आप तो अनिमेष, निष्पलक, अपलक, देखने के योग्य हैं। आपको देखने से आँखों को संतोष मिलता है। गुणों को कोश मिलता है। न देख पाऊँ तो सिर्फ अफसोस मिलता है। दोष फलता है। हे प्रभु! सभी जगह संतोष नहीं मिलता है।

इस सन्दर्भ में एक प्रसंग याद आ रहा है– जो संतोष आपके पास मिलता है, वह संतोष अन्यत्र नहीं मिलता है। मेरा आहार टीकमगढ़ में एक परिवार में हुआ। सपरिवार बहुत खुश! बहुत खुश! बहुत खुश!! बोले महाराजश्री आज ऐसा अपूर्व आनंद आया है, ऐसा आनंद आया है कि जीवन में कभी नहीं आया है। तब मैंने पूछ लिया कि जिस दिन आप घोड़े पर बैठे थे, बारात निकली थी, क्या उस दिन भी आनंद नहीं आया था? बोले– महाराजश्री! उस दिन भी ऐसा आनंद नहीं आया था, जैसा आनंद आज आपको आहार देते हुये और देखते हुये और निर्विघ्न आहार पूर्ण होने के बाद आ रहा है।

प्रिय आत्मन्!

सच है देखने योग्य को देखो तो आनंद आयेगा। आपको देखने से संतोष मिलता है। आपको सुनने से संतोष मिलता है। आपका स्पर्श करने से संतोष मिलता है। आपके निकट बैठने से संतोष मिलता है। आपकी संगति पाने से संतोष मिलता है। हर जगह संतोष नहीं मिलता, कहीं लोभ जागता है, कहीं क्रोध जागता है, कहीं अभिमान जागता है, कहीं माया जागती है, लेकिन आपके पास आने पर आत्म संतोष मिलता है। कहीं पर रोष मिलता है, लेकिन आप ही एक ऐसे हो जहाँ संतोष मिलता है।

संतोष की महिमा ही ऐसी है कि जहाँ मन संतुष्ट हो जाता है, वहीं तो जीव रहेगा। बहुत देर तक आप घूम रहे हैं, वस्तुयें अनेक देखते हैं। अनेक वस्तुयें देखने के बाद, जिस वस्तु में आपका मन भर जाता है, नयन भर जाते हैं, नेत्रों के लिये यह रंग अच्छा लग रहा है और मन के लिये वस्तु अच्छी लग रही है, उसी वस्तु पर आप ठहर जाते हैं। अब दूसरी वस्तु नहीं चाहिये, मात्र यही बात है। प्रभु! इसलिये जो समझदार दुकानदार होते हैं, वे वस्तु का मूल्य बाद में बताते हैं। पहले पसंद कर लो,

पसंद के बाद पसंद का मूल्य बतायेंगे। आपके नयनों को वस्तु संतोष दे दे और आपके मन में वस्तु संतोष दे दे फिर पैसे की क्या कीमत? मन पसंद माल, मन पसंद दाम दोनों होते हैं। तभी ग्राहक और विक्रेता संतुष्ट होते हैं।

प्रिय आत्मन्!

मनुष्य के नेत्रों को संतोष देने वाली, आनंद देने वाली आपकी मुद्रा है, आपकी छवि है, आपकी प्रतिमा है, आपकी प्रतिभा है, आपका रूप है,आपका स्वरूप है।

हे जिनेन्द्र देव! मैंने बचपन से अब तक व्यापार, वाणिज्य, कला, शिक्षा सभी को सीखा है और भ्रमणशील मन ने सर्वत्र भ्रमण किया किन्तु संतोष कहीं नहीं मिला। संतोष मिला आपको देखकर, वीतराग को देखकर, सर्वज्ञ को देखकर,हितोपदेशी को देखकर, क्योंकि आप ही आपरूप हैं। आप मेरे रूप हैं, मैं आपका रूप हूँ। आप मेरे भविष्य हैं, मैं आपका भूत हूँ। आप मेरे भविष्य हैं, और अपना भविष्य देखकर किसे संतोष नहीं मिलता है? हे वीतराग देव!

नाम तिहारा तारण हारा, कब तेरा दर्शन होगा?

तेरी प्रतिमा इतनी सुंदर, तू कितना सुंदर होगा?

किं सुंदरम्? सुंदर क्या है? सुंदर किसे कहते हैं? सुंदर कौन होता है? ये पुद्गल को देखने वाले पुद्गल की सुंदरता ही देखेंगे, चर्म की आँख से देखने वाले चर्म की सुंदरता देखेंगे। कुंदकुंद आचार्य के समयसार में देखो, सुंदर की परिभाषा क्या है?

एयत्त णिच्छयगओ, समओ स्वत्थ सुंदरो लोए।

बंधकहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होइ।। स.सा./3।।

लोक में सर्वत्र सुंदर कौन है? एकत्व, विभक्त्व, स्वरूप को प्राप्त हुआ आत्मा जिसने सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों को एक कर लिया है। निश्चय रत्नत्रय में लवलीन हो गया है। ऐसा आत्मा सर्वत्र सुंदर है, जिसका रूप नहीं है, वह सुंदर है, जिसका रूप है वह सुंदर नहीं है। रूप को देखकर सुंदर मत बताना, यह पुद्गल का है। **स्वरूप का सौन्दर्य ही सुंदरता है,** रूप की सुंदरता से कोई सुंदर नहीं होता। स्वरूप का सौन्दर्य, गुणों का सौन्दर्य ही सुंदरता है। इसलिये **ब्यूटीफुल नहीं ड्यूटीफुल,** कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही सुंदर माना जाता है। मात्र रूप सुंदर नहीं।

किं सुन्दरम्? यत् समीचीनं तत् सुन्दरम्। कः? आत्मा।

यथार्थ, समीचीन, सम्यक् को सुंदर कहते हैं।

जे सम्यक् है, प्रशस्त है, समीचीन है, सही है, वही सुंदर है। जो सही नहीं है, वह सुंदर नहीं है। कुंथल गिरि यात्रा पर हम लोग जा रहे थे। कुल सात किलोमीटर दूर कुंथलगिरि रह गया। दो रास्ते मिले। एक रास्ता सुंदर था और एक रास्ते पर सड़क निर्माण का कार्य चल रहा था इस कारण से वह उखड़ रहा था। संघ के दो महाराज बोले– आचार्यश्री ये सुंदर वाला रास्ता कुंथलगिरि जाने के लिये ठीक रहेगा। क्योंकि जो सुंदर दिख रहा है, वही तो ठीक होगा। पर मुझे संतोष नहीं हुआ। इतने में ही एक सज्जन साईकिल पर सवार होकर आ रहे थे, हमने उनसे पूछा– क्यों भाई? इन दोनों रास्तों में से कुंथलगिरि जाने का कौन–सा रास्ता है? वह व्यक्ति बोला– बाबाजी! ये जो रास्ता उखड़ रहा है, ये ही कुंथलगिरि का रास्ता है। इस रास्ते से होकर जायेंगे तो आप लोग कुंथलगिरि पहुँच जायेंगे। तब बात समझ में आ गई कि जो सुंदर रास्ता देख रहे हैं, वह रास्ता कहीं ओर जा रहा है, जो असुंदर तो लग रहा है वह हमारी मंजिल तक जा रहा है। जो असुंदर है वह सुंदर है कि जो सुंदर है वह असुंदर है?

जो समीचीन है, जो सम्यक् है, वह सुंदर है। और जो समीचीन नहीं है, वह सुंदर नहीं है। सुंदरता की परिभाषा रूप से नहीं होती है। सुंदरता को कुंदकुंद आचार्य ने समीचीन शब्द में बाँधा है। जैनदर्शन के एक–एक शब्द का अर्थ आत्मा से जुड़कर निकलता है। सुंदर शब्द का अर्थ करने वाला विश्व में ऐसा कोई दूसरा साहित्य नहीं मिलेगा, जो जिनसेन आचार्य ने समयसार में अर्थ किया है, जो कुंदकुंद ने अर्थ किया है। इसलिये जैनदर्शन के शब्दों का अर्थ जैनदर्शन में ही मिलेगा। जैसे– बेटे का खून उसी परिवार के सदस्य में मिल जाता है उसी तरह से शब्दों के जो अर्थ हैं वे भी यहीं मिलेंगे। इन शब्दों के अर्थ को बाहर खोजते हैं तो नहीं मिलेंगे। तुम जैन हो तुम्हें कोई भी शब्द का अर्थ खोजना है तो जैनदर्शन के शब्दकोष में जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष में खोज लो तभी तुम्हें जैन अर्थ मिलेगा।

जैन का अर्थ है– इंद्रिय और मन को विजय दिलाना वाला। दर्शन से नयनों को संतोष मिलता है। आँखों को संतोष मिला कि नहीं, मैंने जिसे देखा वह अनिमेष विलोकनीय है कि नहीं? ऐसा तो नहीं कि देखने के बाद पलक झपकानी पड़ती हो, देखने के बाद चेहरा छुपाना पड़ता हो।

प्रिय आत्मन्!

अनिमेष, विलोकनीय वीतराग देव के सिवा अन्य कौन हो सकता है? अन्य कोई भी नहीं हो

सकता है? नेत्रों को आनंद देने वाला अन्यत्र कोई नहीं हो सकता है। जिसने क्षीर सागर के निर्मल जल को पी लिया हो, क्या वह खारे समुद्र के पानी को पीने जायेगा? लवण समुद्र का पानी पीयेगा? बिल्कुल नहीं पीयेगा। क्योंकि उसने तो वह स्वाद ले रखा है, जो स्वाद क्षीर सागर के अलावा कहीं मिलना ही नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

वीतरागदेव क्षीर सागर के समान हैं, अन्यदेव लवण समुद्र के खारे पानी के समान है। देखना है तो वीतराग देव को देखो, सुनना है तो वीतराग देव की वाणी को सुनो, माथा झुकाना है तो वीतराग देव को झुकाओ। देखो, सुनो मना नहीं है, पर तुम किसको देख रहे हो? जिसको देखने से सम्यक्‌दर्शन न हो उसे मत देखना। जिसको जानने से सम्यक् ज्ञान न हो उसे मत जानना और जिसके साथ चलने से सम्यक् चारित्र न हो उसके साथ मत चलना। देखने से सम्यक् दर्शन हो रहा कि नहीं? श्रद्धा जाग रही है कि नहीं? मन क्यों भटक जाता है?

आचार्यदेव कहते हैं– एक बार वीतराग देव में मन टिका लो, मन कहीं नहीं भटकेगा। यह श्रद्धा का दीपक बुझना नहीं चाहिये, अचल रहना चाहिये। दर्शनीय स्थल और कहीं नहीं है, दर्शनीय स्थल तो आत्मा के बाहर है ही नहीं। पुद्‌गल का दर्शन क्या दर्शन? ऊँची पहाड़ियाँ, झीलों की नगरी उदयपुर और राजस्थान मेवाड़ की भूमि भ्रमण शील जीवों का मन मोह लेती है। पर श्रमण शील जीवों का मन पुद्‌गल के प्रति मोह को प्राप्त नहीं होता है।

जो श्रमणशील हैं वे भ्रमणशील नहीं होते हैं। जो भ्रमणशील होते हैं, वे श्रमणशील नहीं होते हैं। श्रमणशील बनो, भ्रमणशील नहीं बनना है। श्रमण शील, मुनि स्वभावी, आत्म स्वभावी, रत्नत्रय स्वभावी जो आत्मा है वह श्रमण स्वभावी है।

अन्यत्र मन न भटक जाये, अन्यत्र मन न अटक जाये? अटके तो वीतराग देव में। कितना संतोष पाया है? दर्शन को आये, दर्शन किये, कुछ मिला न मिला, संतोष तो मिला, खुशी तो मिली, प्रसन्नता तो मिली।

प्रसन्नता एव प्रसादः।

प्रसन्नता ही प्रसाद है। खुशी ही प्रसाद है। आपने चावल चढ़ाये, क्या मिला? खुशी मिली, आनंद मिला। मैंने तो मुट्ठी भर चावल ही चढ़ाये थे लेकिन तुमने तो बदले में समुन्दर भर खुशियाँ लौटा दी। मैंने तो पाँच ढ़ेरी चावल ही चढ़ाये थे, तुमने तो पंचकल्याण–सा आनंद दे दिया। मैंने तो आठ द्रव्य ही चढ़ाये थे, तुमने तो मुझे अष्टम भूमि का पथ दिखा दिया।

प्रिय आत्मन!

खुशी से बढ़कर कोई वस्तु नहीं होती है। आत्मीय आनंद और पौद्गलिक आनंद अलग–अलग है। वीतराग भाव से मिला आत्मीय आनंद है, पुद्गल पदार्थ के संयोग से मिला आनंद भी क्षणिक और पौद्गलिक है। इसलिये आचार्यों ने यहाँ तक लिखा है कि पूर्व प्रतिमा और अपूर्व प्रतिमा दो प्रकार की प्रतिमा होती है। जिस प्रतिमा के हम प्रतिदिन दर्शन करते हैं, वह प्रतिमा पूर्व प्रतिमा कहलाती है। जिस प्रतिमा का छः माह के बाद दर्शन करते हैं या जिस प्रतिमा का दर्शन कर चुके थे, लेकिन विस्मरण हो गये कि वह प्रतिमा कैसी है? छवि कैसी है? आकार कैसा है? प्रकार कैसा है? तो पुनः उस प्रतिमा के दर्शन करना अपूर्व प्रतिमा है। अपूर्व प्रतिमा का दर्शन, अपूर्व विशुद्धि जागृत करता है। उस विशुद्धि से सम्यग्दर्शन प्रकट होता है।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं कि जिनबिम्ब दर्शन से सम्यक् दर्शन होता है। कौन–सी गति में जिनबिम्ब दर्शन से सम्यक् दर्शन होता है? तिर्यञ्च गति में और मनुष्य गति में। पशु, जिनेन्द्र मुद्रा को देख लें, दिगम्बर मुनि के रूप को देख लें तो उसे सम्यक्दर्शन हो जाता है। यहाँ तक बताया है कि पारसनाथ भगवान जब हाथी की पर्याय में थे। वज्रघोष हाथी उनका नाम था। तब उन्होंने अपने ही राजा अरविंद मुनि की मुद्रा को देखा था और देखकर सम्यक्दर्शन प्रकट हो गया था।

प्रिय आत्मन्!

जिनबिम्ब दर्शन अपलक दर्शन के योग्य हैं, छुपाने के योग्य नहीं है। तुम कहाँ जा रहे हो? माँ के पास जा रहे हो। तुम बहुत छोटे हो क्या? जो माँ के पास ऐसे जा रहे हो। कुछ वस्त्र पहन के जाना, कुछ बनके जाना। तात्पर्य क्या है? अनिमेष, विलोकनीय नहीं हो। दुर्योधन एवं गांधरी का यह लोक दृष्टान्त बतलाता है कि जो अनिमेष, विलोकनीय नहीं वह आवरण के साथ रहता है।

प्रिय आत्मन्!

जो अपलक विलोकनीय है, देखने योग्य है, देखते ही रह जाओ, मन भरता नहीं, आँखें थकती नहीं, ऐसा अपूर्व आनंद आता है। आँखें, पलकें, झपकाने में भी बाधा लगती है कि झपकाना न पड़ती तो कितना अच्छा होता है। मैंने कई बार ऐसा देखा है। गोम्मटेश्वर में जब बाहुबली के दर्शन करते खड़ा हो जाता था तो बहुत लम्बे–लम्बे समय तक प्रतिमा को देखता रहता था। कभी इस कोने से, कभी उस कोने से, कभी बैठकर के, कभी खड़े होकर के, कभी कहीं से, ऐसा

अपूर्व आनंद आता था, गोम्मटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा को देखकर के। जब आप मेरे द्वारा रचित गोम्मटेश्वर विधान पढ़ेंगे तब देखेंगे कि विभवसागरजी ने कैसे दर्शन किये होंगे? लगभग दस महीने का प्रवास रहा मेरा गोम्मटेश्वर में। ऐसे अपूर्व दर्शन किये। अपलक देख रहे हैं। बाहुबली को, कर्मदली को मात्र एक को ही देख रहे हैं, दूसरे को देखने की आवश्यकता क्या है? एक को देख लिया अब दूसरे को देखने की आवश्यकता नहीं है। मैंने वीतराग देव आपको देख लिया है, अब दूसरे को देखने की आवश्यकता नहीं है। एक को दिखा दिया है अब दूसरे को दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

तन का श्रृंगार दिखाने के लिये होता है, देखने के लिये नहीं। जीवन श्रृंगार दूसरों को दिखाने के लिये नहीं होता है, यदि रत्नत्रय का श्रृंगार हो जाये, आत्मा का दर्शन हो जाये, क्या श्रृंगार इतना ही है? पर का श्रृंगार, क्या श्रृंगार? वह क्या श्रृंगार जो फिर से सींग को उत्पन्न कर दें? वह श्रृंगार, क्या श्रृंगार? जो दुर्भाव के अंगार पैदा कर दें?

प्रिय आत्मन्!

श्रृंगार गृहस्थ महिलाओं में भी हो तो मात्र पति के लिये होना चाहिये, अन्य किसी के लिये नहीं। हम वर्तमान की इस दशा को सुधारें। श्रृंगार मंदिर के लिये नहीं है, भगवान को तुम्हारा रूप नहीं देखना है, अब बताओ तुम किसे दिखाओगे? जिनवाणी तुम्हारा रूप नहीं देखना चाहती है, अब बताओ किसे रूप दिखाओगे? गुरु नहीं देखना चाहते हैं, किसे दिखाओगे? इसलिये मात्र एक ही बात है श्रृंगार पति के लिये किया जाता है अन्य किसी के लिये नहीं। इसलिये श्रृंगार की सीमा घर तक रहती है। जब मंदिर की ओर बढ़ते हैं तो यहाँ पर तो भक्त का स्वरूप सामने आता है। जब हम मंदिर आते हैं, कभी भी दूल्हे के वेश में नहीं आते हैं। दूल्हे का वेश तो उसी दिन उतार दिया था। अब तो हम मंदिर आते हैं तो पुजारी के धोती दुपट्टा पहनकर आते हैं। यही स्वरूप है सच्चे भक्त का। देखना है वीतराग देव को देखना है। जानना है वीतराग देव को जानना है। अन्य किसी को न देखना, अन्य किसी को न जानना। जैसा बनना हो वैसा जानना। और जैसा दिखना हो, वैसा देखना। हम वीतराग को देखकर के वीतरागी बनते हैं और रागी को देखकर के रागी बनते हैं। हम वीतराग प्रतिमा के सामने आते हैं यही जैनदर्शन की सर्वोत्तम शिक्षा देती है। वीतराग मुद्रा जो शिक्षा देती है, वह शिक्षा अविकारी बनाती है।

*****